मृदा एवं जल संरक्षिका

राजभाषा पत्रिका

अंक – 3
2018–21

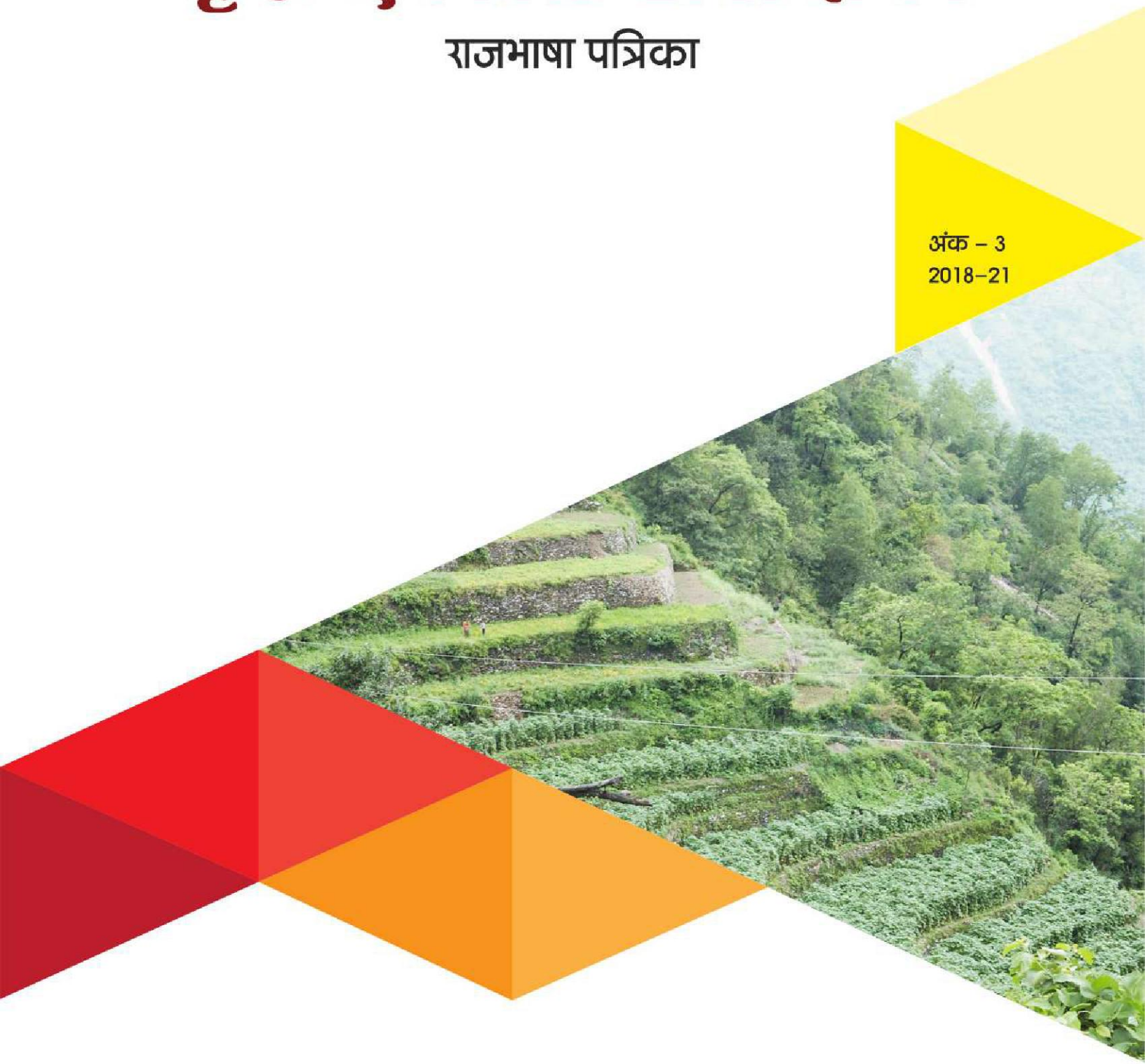

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान
देहरादून - 248195 (उत्तराखण्ड)

भा.कृ.अनु.प.
I.C.A.R.

ISO 9001:2015

2018–21

संरक्षण, मार्गदर्शन एवं प्रकाशन

निदेशक
भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून (उत्तराखण्ड)

सम्पादक मण्डल

- ❖ डॉ अविनाश चन्द्र राठौर
- ❖ डॉ संगीता नैथानी शर्मा
- ❖ डॉ लेख चंद
- ❖ श्री सुरेश कुमार

मुद्रण

अपना जनमत, 16-ए सुभाष रोड़, देहरादून (उत्तराखण्ड)
फोन : 0135-2653420

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, तार्किकता एवं सत्यता हेतु लेखकगण उत्तरदायी हैं।

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान

218, कौलागढ़ मार्ग, देहरादून – 248195 (उत्तराखण्ड)

ISO 9001:2015

प्राक्कथन

भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून (उत्तराखण्ड) राजभाषा के माध्यम से तीन प्रमुख प्राकृतिक संसाधनों, यथा मृदा, जल एवं वनस्पति के संरक्षण एवं संवर्धन व कृषि, बागवानी, वानिकी एवं इनसे संबद्ध क्षेत्रों, विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन, किसानों की आय दोगुना करने, आजीविका की सुरक्षा; के ज्ञान/तकनीकों को किसानों/हितधारकों तक सरल, स्पष्ट रूप में राजभाषा के माध्यम से संस्थान द्वारा आयोजित किये जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों जैसे किसान दिवस, किसान गोष्ठी, मेरा गाँव मेरा गौरव, के द्वारा पहुंचाने का कार्य निरन्तर कर रहा है। साथ ही संस्थान की राजभाषा–हिन्दी में पत्रिका, **'मृदा एवं जल संरक्षिका'** संस्थान में राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके अतिरिक्त संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसंधान लेख/पर्चे भी राजभाषा में प्रकाशित हो रहे हैं।

पत्रिका के लिए लेख अन्य संस्थानों से भी आमंत्रित किए जाते हैं, जिस के माध्यम से संस्थान के अन्य संस्थानों के साथ संबंध और सुदृढ़ होते हैं। चूँकि पत्रिका के लिए लेख संस्थान का कोई भी कर्मचारी/अधिकारी लिख सकता है, अतः पत्रिका के माध्यम से संस्थान के सभी कर्मचारियों/अधिकारियों को उनकी लेखन शैली को प्रदर्शित करने व निखारने के समान अवसर प्राप्त होते हैं। पत्रिका के लिए लेख कर्मचारी/अधिकारी मिल कर लिखते हैं। इस से राजभाषा के कार्यालय में प्रयोग के साथ–साथ कर्मचारियों/अधिकारियों के संबंधों में घनिष्टता बढ़ती है, कार्यालय में सौहार्द बढ़ता है , जो किसी भी संस्थान के लिए लाभप्रद है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि संस्थान के अधिकारी/कर्मचारी संस्थान में अपने नियत कार्यों के अतिरिक्त, राजभाषा के कार्यान्वयन को अपने–अपने स्तर पर और बढ़ावा देने की दिशा में निरतंर कार्य करेगें।

पत्रिका के सम्पादक मण्डल को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(एम. मधु)
निदेशक

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान

218 कौलागढ़ मार्ग, देहरादून - 248195 (उत्तराखण्ड)

फोन : 0135-2758564, फैक्स : 0135-2754213, एवं 2755386

प्रभारी राजभाषा की कलम से

श्रद्धेय पाठक गण,

मुझे आपके कर कमलों में संस्थान की राजभाषा पत्रिका, '**मृदा एवं जल संरक्षिका**' का तीसरा अंक देते हुए विशेष रूप से हार्दिक आनन्द का अनुभव हो रहा है। ऐसा इसलिए है चूँकि कई तकनीकी कारणों व कोविड महामारी के चलते पत्रिका का प्रकाशन गत वर्षों में नहीं हो पाया था, यद्यपि पत्रिका की पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए भेजी जा चुकी थी। अतः, पत्रिका में वर्ष 2018 से 2021 तक प्राप्त लेखों का चयन कर उन्हें पत्रिका में प्रकाशित किया गया है।

इस काल खण्ड में संस्थान के पूर्व निदेशक डॉ पी के मिश्रा व दो कार्यकारी निदशकों, डॉ पी आर ओजस्वी एवं डॉ आर एस यादव ने अपने सेवाकाल में संस्थान में राजभाषा के प्रयोग एवं प्रसार पर बल दिया और संस्थान के राजभाषा प्रकोष्ठ को हर स्तर पर और प्रभावी बनाने के लिए सुझाव दिये।

पत्रिका के इस अंक का प्रकाशन सर्वोपरि लेखकों के योगदान के अतिरिक्त मुख्य रूप से संस्थान के वर्तमान निदेशक डॉ एम मधु के मार्गदर्शन, संस्थान के प्रशासन, व वित्त एवं लेखा विभाग के सहयोग से संभव हुआ है। पत्रिका का सम्पादक मण्डल आप सब का आभारी है।

पत्रिका में कुछ साहित्य, कविताओं के रूप में, व लेख मृदा, जल, कृषि, बागवानी, मत्स्य पालन आदि के विभिन्न पहलुओं पर समाहित हैं। पत्रिका के हर नये अंक को पिछले अंक से अधिक रूचिकर व अर्थपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाता है, साथ ही इस संबंध में आपके सुझावों के लिए मैं व सम्पादक मण्डल प्रतीक्षारत रहता है।

संगीता नैथानी शर्मा
प्रभारी अधिकारी
(राजभाषा पत्राचार)

अनुक्रमणिका

	लेख / कविताएं	लेखक	
1.	अवनत भूमि में लेमन घास की व्यवसायिक खेती एवं मूल्य सवंर्धन	जग मोहन सिंह तोमर, राजेश कौशल, आनन्द गुप्ता, रवीश सिंह एवं हर्ष मेहता	1
2.	आधुनिक कृषि उत्पादन में हरित फसलों का महत्व	देवीदीन यादव, एन के शर्मा, पुष्पेन्द्र कुमार, दिनेश कुमार, अनीता कुमावत एवं सास्वत कुमार	6
3.	विभिन्न परिस्थतियों में अच्छे फसलोत्पादन हेतु उर्वरक संस्तुतियाँ एवं इनका आधार	गोपाल कुमार, तृषा रॉय एवं गंभीर सिंह	10
4.	पर तुम न आये	लता भंवर	15
5.	किसानों की आय दोगुनी करने की उपयोगी विधियाँ	मुकेश कुमार मीना, राजीव रंजन एवं कर्मवीर	16
6.	कृषि वानिकी द्वारा कीट एवं रोग नियंत्रण	विभा सिंघल, तृषा रॉय, ज्योर्तिमय घोष, शीराज भट्ट एवं चरण सिंह	20
7.	बीते लम्हें	लता भंवर	22
8.	मृदा के सूक्ष्मजीवों पर गेहूँ के खरपतवारनाशी मैट्रीब्युजीन का प्रभाव	नवनीत पारीक, शिखर कौशिक, किरण पी रावेरकर, रमेश चन्द्रा एवं वी पी सिंह	23
9.	जेरीस्केपिंगः सीमित जल संसाधन में भू–सौन्दर्यीकरण	ममता बोहरा, पारूल पुनेठा एवं बी पी नौटियाल	27
10.	उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में जल दुर्दशा : कारण एवं समाधान	के आर जोशी, इन्दु रावत एवं बाँके बिहारी	30
11.	आँसू जैसी खरी कमाई	कमलेश कुमार	34
12.	भूमि क्षमता वर्गीकरण का महत्व एवं तरीके	राजीव रंजन, गोपाल कुमार एवं गंभीर सिंह	35
13.	उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं के कठोर श्रम का आँकलन	इंदु रावत, के आर जोशी, सुरेश कुमार, अम्बरीश कुमार एवं बाँके बिहारी	41
14.	मृदा अपरदन और संरक्षण	मनोज कुमार भट्ट, रिनी लाबनया, शिखर कौशिक एवं विनित कुमार	43
15.	मृदा स्वास्थय में पीएच की उपयोगिता एवं उसका प्रबंधन	गंभीर सिंह, राजीव रंजन एवं गोपाल कुमार	47
16.	संरक्षण खेती, कार्बन अभिग्रहण– भारतीय कृषि के लिए संभावनाएँ	वी सी पांडे, पी आर भटनागर, डी दिनेश, विजय काकड़े एवं गौरव सिंह	50

17. जून की तपती दोपहर में	सी एस तिवारी	54
18. हिन्दी के प्रचार में अहिन्दी भाषी विद्वानों का अवदान	कमलेश कुमार एवं अशोक कुमार	55
19. अपरदित निम्नीकृत भूमि में कागजी निम्बू की खेती से बढ़ायें आमदनी	अविनाश चंद्र राठौर, जे जयप्रकाश, आनंद कुमार गुप्ता, हर्ष मेहता, श्रीधर पात्रा, दीपक सिंह, देवीदीन यादव, एवं दर्शन कदम	58
20. वर्तमान में सार्वजनिक जल संसाधन प्रबंधन– एक आवश्यकता	वी सी पांडे, पी आर भटनागर, एवं डी आर सेना	65
21. दस्तक	सी एस तिवारी	69
22. परिशुद्धता खेतीः कृषि में क्रॉंति	तृषा रॉय, आई रश्मि, रमा पाल, दीपक सिंह, अभिजित सरकार, मधुमोहन्ती साहा, उदय मण्डल, विभा सिंघल एवं इंदु रावत	70
23. उत्तराखण्ड के देहरादून जिले में सन् 1901 से 2002 तक मासिक तापमान की प्रवृत्ति का अध्ययन	सादिकुल इस्लाम, अक्षय धीरज, एम मुरूगानन्दम, आनन्द कुमार गुप्ता, संगीता नैथानी शर्मा, पवन कुमार एवं सास्वत कुमार कर	73
24. सिलपोलिन तालाब में वर्षा जल संचयन और इसका कुशल उपयोग	प्रवीण जाखड़, कर्मबीर, ज्योतिप्रवा दाश, पार्था प्रतिम अधिकारी एवं अंजित कुमार	77
25. असेला स्नोट्राउट–पहाड़ी क्षेत्र की एक विशिष्ट मत्स्य प्रजाति	कृपाल दत्त जोशी	80
26. उत्तराखण्ड के देहरादून जिले में पिछली शताब्दी (वर्ष1901 से 2002) में मासिक वर्षा की प्रवृत्ति का अध्ययन	सादिकुल इस्लाम, अक्षय धीरज, एम मुरूगानन्दम, आनन्द कुमार गुप्ता, संगीता नैथानी शर्मा, पवन कुमार एवं सास्वत कुमार कर	83
27. कृषि में ड्रोन तकनीक का उपयोग	अक्षय धीरज, सादिकुल इस्लाम, आनंद कुमार गुप्ता, सपना निगम, सलम जयाचित्रा देवी, नीतीश कुमार एवं पवन कुमार	86
28. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के संदर्भ में जलागम प्रबंधन कार्यक्रम	प्रशान्त कुमार मिश्रा एवं संगीता नैथानी शर्मा	89
29. खनन, भूस्खलन एवं नदी कटाव से सुरक्षा हेतु जैव–अभियांत्रिक उपाय	आर के आर्या, सी एस तिवारी, एच एस भाटिया एवं अमित चौहान	92
30. ब्लॉकचेन कृषि क्षेत्र को कैसे बदल सकता है	अक्षय धीरज, सादिकुल इस्लाम, आनंद कुमार गुप्ता, सपना निगम, सलम जयाचित्रा देवी, नीतीश कुमार एवं पवन कुमार	96
31. नियुक्ति पत्र	सी एस तिवारी	99
32. बुन्देलखण्ड क्षेत्र में किसानों के खेतों पर उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा संसाधन संरक्षण एवं उत्पादकता में वृद्धि	देवनारायण	100
33. जिम्मेदारी और पानी	दिनेश कुमार 'डीजे'	102

ISO 9001:2015

अवनत भूमि में लेमन घास की व्यवसायिक खेती एवं मूल्य सवंर्धन

जग मोहन सिंह तोमर, राजेश कौशल, आनन्द गुप्ता, रवीश सिंह एवं हर्ष मेहता

उत्तर–पश्चिमी हिमालय क्षेत्र का 2.73 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पथरीली नदी पट्टी भूमियों के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जो कि बरसाती नदी–नाले द्वारा बड़ी मात्रा में लाए गए नदी–पट्टी पदार्थ के जमा होने से बनती है। इसका लगभग 0.3 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र दून घाटी में पड़ता है। रेतीली मृदा संरचना एवं अत्यधिक अंतःसरण दर होने के कारण इस प्रकार की भूमि व्यवसायिक फसल उत्पादन हेतु अनुपयुक्त होती है। इस प्रकार की बंजर भूमि पर लेमन घास की खेती सफलतापूर्वक करके किसानो की आय में वृद्धि के साथ मृदा संरक्षण भी सुनिश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार बंजर भूमि में लेमन घास लगाकर किसानों की आय को दोगुना किया जा सकता है, जो कि हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी का भी लक्ष्य है।

लेमन घासः यह घास कुल पौधा है। इसकी पत्तियों में सिट्राल नाम का रसायन उपस्थित होने के कारण इनमें से नींबू जैसी खुशबु आती है। भारत में लाल तने एवं सफेद तने वाली लेमन घास उगाई जाती है। अपेक्षाकृत सफेद तने वाली किस्म में तेल एवं सिट्राल की मात्रा अधिक होती है। अंतराष्ट्रीय बाजार में लेमन घास के तेल के पौधे का नाम–

वनस्पतिक नामः *सिम्बोपोगॉन फ्लैक्सुओसस*
कुलः– पोएसी

मूल स्थान : लेमन घास को नींबू घास, चायना घास तथा मालाबर घास के नाम से भी जाना जाता है। लेमनघास भारत वर्ष के विभिन्न भागों में उगाई जाने वाली प्रमुख घास है। हमारे देश में सबसे पहले नींबूघास की खेती केरल प्रदेश में आज से लगभग 95 वर्ष पूर्व आरम्भ हुई थी तथा सन् 1951 में लेमन घास अनुसंधान केन्द्र की स्थापना ओडाकल्ली (केरल) में हुई। इसके अलावा भारत में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, केरल, पश्चिम बंगाल तथा महाराष्ट्र में इसकी खेती लम्बे समय से की जा रही है। इसकी खेती बगीचों एवं सेमल, पॉपलर, सागौन, यूकेलिप्टस जैसे कृषिवानिकी वृक्षों के बीच अंतः फसल के रूप में तथा खेतों के चारों तरफ मेढ़ पर लगाकर फसलों की सुरक्षा के साथ–साथ आय में भी वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

रसायनिक घटकः लेमन घास का मुख्य सक्रिय घटक सिट्राल है जो कि इसके तेल में 65–85% प्रतिशत तक पाया जाता है। लेमन घास तेल के अन्य प्रमुख रासायनिक घटक मायरसीन, सीटरोनेला, जेरनोल एसीटेट, नेरोल, लाइमीन इत्यादि है। तेल में उपस्थित सिट्रल से अल्फा आयोनोन तथा बीटा आयोनोन तैयार किये जाते हैं। संश्लेषित बीटा आयोनोन–ओ का उपयोग विटामिन ए तैयार करने में किया जाता है।

पादप विवरणः लेमन घास एक बारहमासी, बहुवर्षीय सुगन्धित घास है जिसकी ऊंचाई 1.5–2.0 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियों की लम्बाई लगभग 125 सेमी तथा चौड़ाई 1.7 सेमी होती है। इसका सामान्य नाम इसकी पत्तियों से नींबू जैसी तीक्ष्ण सुगंध के कारण नींबू घास है। वर्तमान में नींबू घास की खेती भारत के कई राज्यों जैसे केरल, तमिलनाडू, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, असम एवं उत्तराखण्ड के निचले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा रही है।

भूमि एवं जलवायु

लेमन घास की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है किन्तु रेतीली दोमट मिट्टी, जिसका पीएच मान 6.0–7.0 तक हो, सर्वोत्तम मानी जाती है। लेमन घास की खेती के लिए उष्ण तथा समशीतोष्ण जलवायु, जहां पर्याप्त सूर्य का प्रकाश, आर्द्र जलवायु तथा 1500–3000 मि मी वार्षिक वर्षा हो, सर्वाधिक उपयुक्त रहती है, परंतु कम वर्षा वाले क्षेत्र में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

उन्नत किस्में

लेमन घास की कई प्रजातियां हैं। इसमें सुगंधी, कृष्णा, कावेरी, सी.के.पी–25, चिरहरित एवं नीमा प्रमुख हैं। भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून द्वारा शोध में पाया गया है कि दून घाटी के लिए कृष्णा प्रजाति सर्वोत्तम है।

खेत की तैयारी

फसल को बोने से पूर्व खेत की दो तीन बार हैरो (मिट्टी पलटने वाले हल) से आड़ी–तिरछी जुताई कर खरपतवार को निकाल दें तथा आखिरी जुताई के समय सड़ी हुई गोबर की खाद 10 टन प्रति हैक्टेयर की दर से मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए।

उर्वरक

उर्वरक का उपयोग मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा पर निर्भर करता है। इसके लिए मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में जाँच करवा लेनी चाहिए। लैमन घास की अच्छी पैदावार लेने के लिए अंतिम जुताई के समय 80 – 100 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा. फास्फोरस और 40 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से डालना चाहिए। फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा एवं नाइट्रोजन की 2/3 मात्रा खेत की तैयारी के समय डालनी चाहिए और बाकी बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा कटाई के पश्चात् लगभग एक–एक महीने के अंतराल पर तीन बार डालनी चाहिए। शोध द्वारा पाया गया है कि वानस्पतिक वृद्धि के लिए 30 किग्रा. यूरिया का छिड़काव प्रत्येक कटाई के पश्चात् करना चाहिए।

प्रवर्धन

लेमन घास का प्रवर्धन बीज एवं स्लिप विधि द्धारा किया जा सकता है। परन्तु व्यवसायिक उत्पादन हेतु वानस्पतिक विधि (स्लिप) ही उत्तम पायी गयी है। हालांकि बीज द्वारा भी इसका प्रवर्धन किया जा सकता है किन्तु बीज का प्रयोग मुख्यतः संकर किस्में तैयार करने में किया जाता है। व्यवसायिक फसल को बीज द्वारा नहीं लिया जाता क्योंकि बीज द्वारा उत्पादित पौधे दुर्बल होते हैं और वो पूर्णवृद्धि अवस्था आने में काफी समय लेते हैं।

रोपाई का समय

लेमन घास की रोपाई सिंचित दशा में फरवरी–मार्च में की जाती है। असिंचित क्षेत्रों में इसकी रोपाई जुलाई–अगस्त में करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है।

रोपाई की विधि

रोपाई के लिए जड़दार कलमों (स्लिप) को तैयार करने हेतु पुराने पौधों को उखाड़कर उसकी जड़ द्वारा स्लिप को अलग–अलग करके ऊपर के पत्ते तथा नीचे की लम्बी जड़ों को काट कर स्लिप तैयार की जाती है। स्लिप की लम्बाई लगभग 30 सेमी. तक होनी चाहिए तथा एक स्लिप में कम से कम 3 टिलर्स अवश्य होने चाहिए। तैयार की गई स्लिप को 1 लीटर गोमूत्र में 2 लीटर पानी मिलाकर 2–3 घंटे तक डुबाकर रखकर उपचारित करना अच्छा माना जाता है। स्लिप लगाने के बाद खेत में पानी लगा देना चाहिए। गोमूत्र न होने पर इसका उपचार वैविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) से भी किया जा सकता है। लेमन घास को किसान अपने खेत की मेड़ पर भी लगा सकते है ऐसी स्थिति में यह मृदा कटाव रोकने में भी सहायक होती है तथा मेड़ को भी मजबूती प्रदान करती है। शोध द्वारा यह भी पाया गया है कि मेंड़ पर लेमन घास लगाने से खेत में खडी फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है।सिंचित व उपजाऊ खेत में रोपाई करते समय कतार से कतार की दूरी 1 मीटर, पौधे से पौधे की दूरी 75 सेमी तक रखनी चाहिए तथा असिंचित व अनुपजाऊ भूमि में कतार से कतार की दूरी 50सेमी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 50 सेमी. तक रखनी चाहिए।

सिंचाई व जल निकास

अच्छी उपज के लिए खेत में नमी होना आवश्यक है। गर्मी के दिनों में 15 दिन में एक बार सिंचाई करने से पैदावार बहुत अच्छी होती है। सिंचित क्षेत्रों में लेमन घास की 3–4 कटाई की जा सकती है। हालांकि असिंचित दशा में इसकी केवल 2 कटाईयां ली जा सकती हैं। पौधों की जड़ों में पानी जमा रहने से पौधे मरने लगते हैं। अतः लैमन घास के खेत में पानी की निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

निराई–गुड़ाई

लेमन घास में खरपतवार को नष्ट करने की क्षमता होती है, परन्तु फिर भी प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में 2–3 बार निराई–गुड़ाई करना आवश्यक है। गुड़ाई पहले कुदाली द्वारा व बाद में हल द्वारा की जा सकती है।

कीट एवं रोगों से बचाव

यद्यपि लेमन घास एक कठोर प्रकृति का पौधा होता है तथा इसमें कीट एवं रोगों का बहुत प्रभाव कम देखने को मिलता है परन्तु फिर भी इसमें कभी–कभी अंगमारी (लीफ ब्लास्ट) पर्ण बिन्दु (लीफ स्पॉट एवं पीपरोग) का प्रभाव देखने को मिलता है।लैमन घास में मुख्य से चिलोत्रे, जाति के कीटों का प्रभाव भी देखा जाता है। जब पौधे पर इस कीट का प्रभाव बढ़ता है तो पत्तियों के बीच का हिस्सा सूख जाता है, जिससे लेमन घास की उपज में कमी आती है। पौधे को इस कीट से बचाने के लिए नीम की पत्तियों का काढ़ा बनाकर पर्याप्त मात्रा में पानी मिलाकर फसलों पर छिड़काव

करने से कीट से बचाव किया जा सकता है। अंगमारी में पत्तियों पर पहले छोटे–छोटे गुलाबी बिन्दु दिखाई पड़ते हैं जो बढ़ते जाते हैं, जिस कारण पत्तियां सूख जाती हैं। इसके उपचार हेतु मैन्कोजैब या डायफोलेटॉन का 0.3 प्रतिशत घोल पत्तियों पर छिड़कना चाहिए। इसके अलावा लीफ स्पॉट रोग में भी पत्तियां सूखने लगती हैं। पीत रोग की स्थिति में तने में काफी वृद्धि हो जाती है। इसे रोकने के लिए टॉपसिन के 0.3 प्रतिशत अथवा बेनलेट के 0.1 प्रतिशत का घोल पौधों की जड़ों में 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़कना चाहिए।

कटाई

लेमन घास में कटाईयों की संख्या भूमि की उर्वरकता, सिंचाई एवं देख रेख पर निर्भर करती है। रोपाई के लगभग 4–5 महीनों के बाद फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। कटाई के समय फसल 3 से 3.5 फीट तक ऊंची होनी चाहिए। इसके बाद 3–4 महीनों के अन्तराल पर कटाई की जानी चाहिए । अवनत भूमि पर यदि उत्पादन कम हो तो 02 कटाई करनी चाहिए । इस प्रकार प्रथम वर्ष में 2–3 तथा आगे के वर्षों में 3–4 कटाईयां ली जा सकती हैं। फसल की कटाई सही समय पर कर लेनी चाहिए तथा समय–समय पर फूलों की टहनियों को तोड़कर फेंक देना चाहिए अन्यथा इससे तेल की मात्रा में कमी आ जाती है। फसल की कटाई सुबह के समय करनी चाहिए तथा कटाई के बाद इसे छाया में हल्का सुखा लेना चाहिए। लेमन घास को एक बार लगाने के बाद 5–6 वर्षों तक लगातार उत्पादन लिया जा सकता है उत्पादन कम होने की स्थिति में इसको खेत से उखाड कर पुनः तैयारी के साथ लगाना चाहिए।

उपज व लाभ

लेमन घास की उपज सिंचित व असिंचित क्षेत्रों में भिन्न भिन्न पाई जाती है। सिंचित क्षेत्र में ताजा शाक की मात्रा लगभग 55–60 टन प्रति हैक्ट. जबकि असिंचित क्षेत्र में यह 20–30 टन प्रति हे. क्ट. पाई जाती है। उपयुक्त विधि से खेती करने पर 2 या 3 कटाईयों से प्रथम में लगभग 80–120 किग्रा तेल प्रति है.प्राप्त किया जा सकता है, जबकि बाद के 3–4 वर्षों तक अधिकतम 4 कटाईयों से 200–225 किग्रा तेल प्रति हैक्ट. प्राप्त किया जा सकता है। असिंचित दशा में तेल की मात्रा कम हो जाती है मगर शोध में पाया गया कि असिंचित दशा में तेल की गुणवता बढ़ जाती है। सुगंधित तेल का वर्तमान बाजार मूल्य लगभग 1000 से 1500 रू प्रति किग्रा. तक है।

तेल प्राप्ति (आसवन)

लेमन घास का तेल जल वाष्प आसवन विधि द्वारा निकाला जाता है। कटाई के बाद फसल को छाया में सुखाकर घास को टुकड़ों में काटकर या सीधे फसल को आसवन टैंक में डालकार तेल निकाला जाता है। तेल निकालने की प्रक्रिया में 5–6 घंटे का समय लगता है।

आय एवं लाभ

आय एवं लाभ बहुत हद तक फसल की देख–रेख पर निर्भर करता है। लेमन घास लगाने से किसानों को सिंचित क्षेत्रों में रू0 103750.00 प्रति हैक्ट. का शुद्ध लाभ लिया जा सकता है। भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान में किये गये शोध कार्यो से यह पाया गया है कि असिंचित दशा में लैमन घास से रू0 42250.00 प्रति है. क्ट. का शुद्ध लाभ लिया जा सकता है। शोध में यह भी पाया गया कि बंजर भूमि में लेमन घास लगाने से मिट्टी की गुणवत्ता में बढ़ोतरी होती है।

लेमन घास की खेती के लाभ–

1. बहुवर्षीय फसल होने के कारण प्रति वर्ष बुआई/रोपाई से छुटकारा।
2. खरपतवार की समस्या अपेक्षाकृत कम।
3. विशेष रख रखाव व प्रबंधन की आवश्यकता नहीं।
4. पशुओं द्वारा चरने की समस्या नहीं।
5. बाजार में बढ़ती मांग व अच्छे दाम।
6. अवनत भूमि के सदुपयोग में सहायक।
7. जंगली जानवरों का प्रकोप नहीं।
8. बहुत तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नही।
9. खेत में दीमक और चूहों की संख्या से होने वाले नुकसान में कमी।
10. हिमालयी क्षेत्रों में देखा गया है कि लेमन घास को उगाने से लेन्टाना घास और कांग्रेस घास जैसे खरपतवार भी नष्ट हो जाते है।

लेमन घास के औषधीय उपयोग

लेमन घास की व्यापारिक खेती तेल प्राप्ति के लिए की जाती है। इसके तेल का मुख्य घटक सिट्रल होता है जिसकी उपस्थिति के कारण इसके तेल में नींबू जैसी तीखी सुगंध आती है। लेमन घास में कई औषधीय गुण पाए जाते हैं। यह एंटी बायोटिक, एंटीसैप्टिक, कैंसर रोधी, कफनाशक, कीटनाशी, ज्वर नाशक, मूत्रवर्धक तथा एनाल्जेसिक है। यह विटामिन–ए व विटामिन–सी का बहुत अच्छा स्रोत है,

जिसका उपयोग दवा आदि बनाने में किया जाता है।यही कारण है कि बुखार, खांसी, सर्दी का इलाज करने तथा गाउट, मूत्र पथ की सूजन को दूर करने हेतु लेमन घास की चाय या काढ़ा पीने की सलाह दी जाती है। इसके तेल का उपयोग मुख्यतः इत्र बनाने तथा नींबू की ताजगी वाले सौन्दर्य प्रसाधनों में किया जाता है। तेल निकालने के उपरान्त बचे हुए फसल के अवशेष से वर्मीकम्पोस्ट, साइलेज और मशरूम उत्पादन मे गेहूँ के भूसे की जगह माध्यम के रूप में उपयोग करते हैं। इसकी पत्ती को चाय में डालकर पीने से ताजगी आती है, तथा सर्दी से राहत मिलती है। लेमन घास तेल का उपयोग कीटनाशी, जीवाणुनाशी आदि के रूप में और दर्द निवारक दवाईयाँ बनाने हेतु भी किया जाता

लेमन घास के उत्पादन के विभिन्न चरण

आधुनिक कृषि उत्पादन में हरित फसलों का महत्व

देवीदीन यादव[1], एन के शर्मा[2], पुष्पेन्द्र कुमार[3], दिनेश कुमार[4], अनीता कुमावत[5] एवं सास्वत कुमार कर[6]

भारत विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों से निहित है। किन्तु पृथ्वी पर मानव की बढ़ती हुई आबादी हमारे प्राकृतिक संसाधनों को या तो प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कम करता जा रहा है अथवा प्राकृतिक उत्पत्ति एवं क्रियाओं को प्रभावति कर रहा है। इस कारण विभिन्न प्रकार की मृदा एवं जल क्षरण की समस्या उत्पन्न हो रही है। इस समस्याओं के कारण हमारी कृषि योग्य भूमि दिन ब दिन घटती जा रही है। इससे हमें आने वाले समय में कृषि उत्पादन में कमी का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, आधुनिक कृषि प्रणाली से मृदा की उत्पादक क्षमता में कमी आ रही है, जिसका प्रमुख कारण है मृदा में असंतुलित रासायनिक खादों का प्रयोग, प्राकृतिक जैविक खादों का न्यूनतम उपयोग, फसलों के द्वारा अधिक मात्रा में मृदा से पोषक तत्वों का खनन और उसके उपरांत उतनी ही मात्रा को मृदा में न देना इत्यादि। अतः आज हमें फिर से अपने प्राकृतिक संसाधनों को बचाते हुए मृदा की उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता है। इस संबंध में खेती में हरित (हरी) खाद फसलों का वैज्ञानिक विधि से सममिश्रण अति आवश्यक है। हालाकि कृषि उत्पादन में हरित खाद फसलों का प्रयोग काफी पुराना है, लेकिन यहाँ पर हमने इस लेख के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि हरित खाद फसलों को वैज्ञानिक विधि से किस प्रकार अपनी मुख्य फसलों के साथ लिया जाए, जिससे समय और धन की बचत हो, किसानों पर अधिक कृषि लागत का बोझ न पड़े व मृदा भी सुरक्षित रहे। साथ ही साथ यह भी बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार हरित खाद फसलें हमारे पर्यावरण की रक्षा करते हुए कृषि उत्पादन बढ़ा सकती है।

परिभाषा

हरी खाद की फसलें वे है जो या तो स्वस्थान या बाह्य स्थान उगाई जाती है और मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करती है।

हरी खाद फसलों के सममिश्रण का प्रकार

हरी खाद दो प्रकार की होती है:–

स्वस्थान हरी खाद सममिश्रण– जब हरी खाद की फसलें खेत में हो या तो मुख्य फसल के रूप में या मुख्य फसल के साथ ही उगाई जाती है और उसी खेत में उपयोग की जाती है तो इसे स्वस्थान हरी खाद कहा जाता है जैसे सनई, ढैंचा, मूँग, लोबिया आदि।

बाहयस्थान हरी खाद– बाह्य स्थान हरी खाद वह है जिसमें हरे पत्ते, झाड़ियाँ और पेड़ों की कोमल टहनियों को मिट्टी में निगमन करने के लिए उन्हें आस–पास के वन क्षेत्र, बंजर भूमि और मेंड़ों से एकत्र किया जाता है। जैसे ग्लाइरीसीडिया, करंज, सुबबूल आदि।

प्रमुख हरित खाद फसलें

ढैंचा– ढैंचा का मूल स्थान अफ्रीका है। किसानों के बीच ढैंचा सबसे अधिक लाकप्रिय हरी खाद की फसल है। यह एक त्वरित बढ़ती, रसीली हरी खाद की फसल है, जिसे रोपाई के लगभग 6–8 सप्ताह बाद प्रयोग में लाया जा सकता है। यह फसल मिट्टी और जलवायु की बदलती परिस्थितियों के अनुकूल है।

[1,2,6] भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून
[3] उद्यान महाविद्यालय, पासी घाट, केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय मणिपुर, इम्फाल
[4] भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल सरंक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, दतिया
[5] भा.कृ.अनु.प.-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा

ढैंचा की अनुशंसित बीज बुवाई दर लगभग 40–50 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है। इसकी हरी जैवभार उपज लगभग 20–30 टन/हैक्टेयर है। जैविक नाइट्रोजन निर्धारण के माध्यम से ढैंचा लगभग 96–135 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर स्थिरीकरण करता है।

ससबेनिया– ससबेनिया हरी खाद की फसल में तने और जड़ दोनों पर गाँठ होती है। बुवाई के लिए सामान्य बीज दर लगभग 30–40 किग्रा प्रति हैक्टेयर है। यह लगभग 15–20 टन प्रति हैक्टेयर ताजा पदार्थ पैदा कर सकता है। यह 7–8 सप्ताह की अवधि में लगभग 80–110 किग्रा जैविक नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर स्थिरीकरण करता है। ससबेनिया की फसल गली खेती में शामिल होने की अच्छी क्षमता रखती है। किसान खेत की मेंढ पर भी इसे लगा सकते है। मेंढ़ो पर उगाई जाने वाली ससबेनिया की फसल की छँटाई भी हरी खाद का स्त्रोत बनती है।

सनई– सनई की फसल दक्षिण एशिया (बांग्लादेश, भूटान और भारत से उत्पन्न हुई है। यह आमतौर पर बरसात के मौसम में उगाई जाती है। इस फसल की तेजी से वृद्धि के गुण इसे गर्मियों के अंत में रोपण के लिए अनुकूल बनाती है। यह बुवाई के लगभग 30–45 दिन के बाद मृदा में मिलाई जाती है। सनई की सामान्य बीज दर लगभग 35 किग्रा/हैक्टेयर है। सनई की फसल प्रति हैक्टेयर 95–100 किग्रा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर सकती है। सनई की फसल बहुत अधिक उपज देने वाली और आमतौर पर सूखा प्रतिरोधी होती है।

सुबबूल– सुबबूल मध्य अमेरिका का मूल वृक्ष है। इस बहुउद्देश्य वृक्ष का उपयोग ईंधन, लकड़ी व पशुओं के चारे और हरी खाद के लिए किया जाता है। इस वृक्ष के पत्तों में लगभग 3–4 प्रतिशत नाइट्रोजन होता है। सुबबूल वृक्ष प्रति वर्ष लगभग 260–320 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर स्थिरीकरण करता है। इसके पत्ते जल्दी से विघटित हो जाते है जिससे पोषक तत्वों का तेजी से प्रवाह होता है।

मिट्टी की उर्वरता में सुधार और कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अन्य महत्वपूर्ण हरी खाद की फसलें बरसीम, मूँग, लोबिया, राइसबीन इत्यादि हो सकती है।

हरी खाद फसलों की निगमन तकनीक

हरी खाद की फसल का समावेश उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि फसल का उगाना। खेत में हरी खाद की फसलों का अपघटित शीघ्र होना चाहिए और इसके लिए मिट्टी में पर्याप्त हवा के साथ अच्छी नमी भी होना चाहिए। यह भी महत्तवपूर्ण है कि हरी खाद की फसलों को उनकी मुलायम अवस्था में मृदा में मिलाया जाना जिससे की वे सख्त लकड़ी में न परिवर्तित हो सके और मृदा में आसानी से अपघटित हो जाये। भारी मिट्टी में हरी खाद फसलों को अधिक गहराई तक नही मिलाना चाहिए क्योकि ये अपघटन को कम या रोक सकती है।

हरित खाद फसलों का विभिन्न तरीकों से अनुप्रयोग

बुवाई/रोपण से पहले निगमन

इस विधि में हरित खाद फसले उसी खेत में बुवाई/रोपण से पहले निगमित की जाती है। इस विधि से हरित खाद फसले मृदा में भारी मात्रा में पोषक तत्व और कार्बनिक पदार्थ प्रदान करती है। इस विधि में हरित फसलों को पुआल के साथ मृदा में मिलाया जा सकता है।

हरित फसलों का अंर्तफसलीय प्रणाली में समावेश

हरित खाद फसलों को मुख्य फसलों (मक्का,ज्वार,बाजरा आदि) के साथ दूसरी कतार में मुख्य फसल के पौधों की संख्या को कम किये बिना उगाया जा सकता है। इसके उपरांत हरित फसलों को काटकार के सतह पर डाल दिया जाता है, जो कि मृदा में पलवार का काम करती है अथवा इनको चयनात्मक खरतपतवारनाशी के द्वारा बुवाई के 50 दिन के उपरांत सड़ा दिया जाता है।

वर्धन काल के अंत में मुख्य फसल के साथ अंतः फस्लीय प्रणाली

हरित खाद फसलों को अंतर फस्लीय प्रणाली के रूप में विस्तृत दूरी वाली फसलों (कपास, अरण्डी) के साथ वर्धन काल के अंत में उगाया जा सकता है। इस विधि में हरित खाद फसले मुख्य फसल से बची हुई मृदा नमी का सही तरीके से सदुपयोग करती है और सूखे मौसम में जब मुख्य फसल की कटाई हो जाती है तब मृदा को संरक्षित करते हुए उसकी उत्पादकता बढ़ती है।

बहुवर्षीय परती प्रणाली

जहाँ पर बहुवर्षीय परती प्रणाली अपनाई जाती है। वहाँ पर हरित खाद फसले बहुत ही आसानी से मृदा को परती ना छोड़ते हुए प्रथम वर्ष में उगायी जा सकती है, जिससे परती का समय कम किया जा सकता है।

गली खेती के संयोजन में हरित खाद फसलों का उपयोग

गली खेती एक कृषि वानिकी पद्धति है, जिसमें फसलों को पेड़ों/झाड़ियों के बीच खाली जगह पर उगाया जाता है। हरित खाद फसलों के साथ गली खेती एक बहुत ही महत्वपूर्ण फसल प्रणाली है, जिससे कि मृदा की उर्वरक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

बाह्य स्थान हरित खाद फसलें/हरित पत्ती खाद फसले

इस विधि में हरित खाद फसलों को एक जगह उगाया जाता है और उनको दूसरी जगह ले जाकर मृदा में मिलाया जाता है। हरी पत्तियों के मुलायम डंठल को इकट्ठा करके जिस खेत में आवश्यकता होती है वहाँ डाला जाता है। खाद फसलो को अधिक गहराई तक नही मिलाना चाहिए क्योंकि यह अपघटन को कम या रोक सकती है।

स्वस्थान एवं बाह्य स्थान हरित खाद फसलों के प्रयोग से लाभ

संरक्षित मृदा कवच

परंपरागत जुताई प्रणाली में मृदा कवच लगभग हट जाती है। तीव्र गति से पड़ने वाली बारिश की बूँदे मिट्टी के छिद्रों को बंद कर देती है। यह मिट्टी की सतह को सील करने का कारण बनता है और जल रिसाव को कम करता है। हरित खाद फसलें वर्षा से होने वाली मिट्टी कटाव में कमी लाती है। इसके अतिरिक्त हरित खाद फसले मृदा के ऊपर एक मृदा कवच का कार्य करती हैं, जिससे जल प्रवाह में कमी आती है और साथ ही कार्बनिक पदार्थों की हानी को कम करती है।

मृदा पीएच, विद्युत चालकता और जल धारण क्षमता

हरी खाद की फसलों को अपनाने से अवशेषों के क्षरण के माध्यम से मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि होती है। सड़न से उत्पन्न होने वाले कार्बनिक पदार्थों जैसे बहु शर्कराइड मिट्टी के कणों को मजबूती से जोड़ते हैं और मिट्टी के भौतिक गुणों को सुधारने में मदद करते हैं। मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार के कारण मिट्टी के थोक घनत्व में कमी आती है तथा पानी प्रतिधारण क्षमता को बढ़ाने के साथ मिट्टी की संरचना बढ़ाने में सहायक होती है, जिसके फलस्वरूप मृदा एवं जल संरक्षण की प्रक्रिया और सक्रिय होती है।

कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि

कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की उर्वरता का आधार है क्योंकि यह मिट्टी की भौतिक, रसायनिक और जैविक गुणवता को बढ़ाता है और पौधों के पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। हरित खाद फसलें अधिक मात्रा में बायोमास का उत्पादन करती हैं, जो पुर्नचक्रण और सड़न के बाद मिट्टी में पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ प्रदान करती हैं।

जैविक नाइट्रोजन निर्धारण

हरी खाद फसले अपनी जड़ों तथा तनों पर पाये जाने वाली गाँठ द्वारा जैविक नाइट्रोजन निर्धारण कर मिट्टी में नाइट्रोजन मिलती है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा फली वाली हरित खाद फसलों की प्रजातियों पर निर्भर करती है। इसके अलावा हरित खाद में पौधों के कई आवश्यक पोषक तत्व भी होते हैं। स्वस्थान एवं वाह्य स्थान फसलों द्वारा पोषक नत्रजन निर्धारण एवं उनमें पाये जाने वाले पोषक तत्वों का विवरण तालिका 1 और तालिका 2 में दिया गया है।

खरपतवार नियंत्रण

हरी खाद की फसल से किसानों के श्रम व धन दोनों की बचत होती है, चूँकि खरपतवार नाशक का उपयोग कम होता है। अतः उत्पादन लागत कम होती है। हरी खाद की फसले खरपतवार द्वारा प्रारंभिक अवस्था में पानी, प्रकाश और पोषक तत्वों के उपयोग को कम करती हैं।

उत्पादकता में वृद्धि

हरी खाद फसले मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार कर फसल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती है। कृषक उपयुक्त हरी खाद फसलों का चयन करके और उनका उचित तरीके से प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ा सकते हैं।

हरित खाद फसलें और उनके द्वारा जैविक नत्रजन निर्धारण

हरित खाद फसलें (स्वस्थान हरित फसले)	जैविक नत्रजन निर्धारण (किग्रा. प्रति हैक्ट.)
ढैंचा	96–135
ससबेनिया	83–109
सनई	95–100
लोबिया	60–65
मूंग	35–50
बाह्य स्थान हरित फसलें	
सुबबूल	260–320
करंज	200–210
ग्लीरिसीडिया	105–110

हरित खाद फसलें और उनमें पाये जाने वाले पोषक तत्व

हरित खाद फसलें	सूखे वजन के आधार पर पोषक तत्व (%)		
	एन	पी	के
ढैंचा	3.3	0.7	1.3
सनई	2.6	0.6	2.0
ससबेनिया	2.7	0.5	2.2
शरपुंखा	2.4	0.3	0.8
हरित पत्ती खाद फसलें			
करंज	3.2	0.3	1.3
ग्लीरिसीडिया	2.9	0.5	2.8
नीम	2.8	0.3	0.4

निष्कर्ष

अतः यह कहा जा सकता है कि यदि हरित खाद फसलों को वैज्ञानिक विधि से कृषि उत्पादन में सम्मिलित किया जाये तो ये मृदा स्वास्थय और कृषि उत्पादन को दीर्घकालीन आधार प्रदान कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे प्राकृतिक संसाधनों की उत्पादकता को भी बढ़ा सकती है।

राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है।

– महात्मा गाँधी

विभिन्न परिस्थतियों में अच्छे फसलोत्पादन हेतु उर्वरक संस्तुतियाँ एवं इनका आधार

गोपाल कुमार, तृषा रॉय एवं गंभीर सिंह

बदलती जलवायु, अस्थिर फसल उत्पादन के दौर में पोषक तत्व प्रबंधन को फसल उत्पादन बढ़ाने तथा लागत कम करने हेतु आवश्यक माना जा रहा है। उत्तम तकनीकी की उपलब्धता, नई फसल किस्मों का विकास, सिंचाई की बढ़ती एवं बदलती व्यवस्था, या नई समकालीन फसल प्रबंधन, फसलोत्पादन वृद्धि के लिए अहम हो गया है। इस नए प्रबंधन में फसल की आवश्यकता के अनुसार एवं रासायनिक उर्वरकों के आवश्यकता से अधिक प्रयोग के कारण पर्यावरण को होने वाले दुष्प्रभाव को ध्यान में रख कर उर्वरक प्रयोग व उसकी मात्रा का निर्धारण आवश्यक है। हमारे अधिकतर किसान आज भी परंपरागत जानकारी, अपनी सीमित सूझ–बूझ के बल पर कालांतर में की गई उर्वरक संस्तुतियों के अनुसार उर्वरक का उपयोग कर रहे है, जिस कारण फसल उत्पादन मे कमी के साथ–साथ पर्यावरण पर भी दुश्प्रभाव पड़ रहा है। ऐसे में मिट्टी परीक्षण एवं फसल चुनाव के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति एवं उपयोग एक आवश्यक वैज्ञानिक विधि है।

मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रयोग की संस्तुति

मृदा परीक्षण, मिट्टी और उर्वरक के पोषक तत्वों के उचित प्रबंधन के लिए एक महत्वपूर्ण अभ्यास के रूप में उभरा है। उर्वरक प्रबंधन की रणनीति का उर्वरक प्रभावशीलता एवं पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन पर आधारित होना अनिवार्य है। एक फसल प्रणाली में फसल की उर्वरक की आवश्यकता प्रकृति से बहुत अधिक प्रभावित होती है। फसलों को पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा, ग्रहण करने योग्य रूपों में और अनुपात में उपलब्ध हों। अतः उर्वरकों का संयोजन ऐसा होना चाहिए कि वे पौधों की आवश्यकता वाले पोषक तत्वों को उचित मात्रा एवं अनुपात में प्रदान करते हों। फलस्वरूप, वांछित उपज लक्ष्यों को मिट्टी परीक्षण आधारित उर्वरकों संस्तुतियों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

सामान्य संस्तुति

ये संस्तुति एक विशेष फसल के लिए इष्टतम खुराक पहुँचाने के लिए नत्रजन, फास्फोरस और पोटेशियम उर्वरकों की वर्गीकृत खुराक के साथ आयोजित बहु–स्थानीय परीक्षणों के परिणाम पर आधारित है। कई बार किसी खास जगह अथवा परिस्थिति के लिए बनाई गई उर्वरक संस्तुतियाँ ऐसी जगहों के लिए भी उपयोगी होती है। उदाहरण के तौर पर दिल्ली राज्य के लिए बनाई गई सामान्य संस्तुति की कई स्थितियाँ में उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए उपयोग होती रही है, किन्तु इस प्रकार की उर्वरक संस्तुतियों में मिट्टी की उर्वरता में भिन्नता को अनदेखा किया जाता है। अतः उच्च या निम्न उत्पादन स्थितियों के तहत ये पोषक तत्व या तो अपर्याप्त या अत्यधिक साबित होते है और दोनों परिस्थतियों में उर्वरक पोषक तत्वों की इष्टतम उपयोग दक्षता प्राप्त नहीं की जा सकती है। दीर्घकालिक उर्वरक प्रयोगों से ये पाया गया है कि जलोढ़ मिट्टी, काली मिट्टी एवं लाल मिट्टी पर गहन फसल में फास्फोरस के सतत् प्रयोग के कारण इसका जमाव हो गया और इनमें अब फोस्फोरस उपयोग की आवश्यकता कम हो गई है।

मिट्टी की उर्वरता रेटिंग के आधार पर संस्तुति

भारत में मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं से जारी की गई अधिकांश संस्तुतियाँ मिट्टी परीक्षण रेटिंग पर आधारित है। मध्यम उर्वरता की मिट्टी के लिए सामान्य अनुशंसित मात्रा उपयुक्त होती है, जबकि कम और बहुत कम या उच्च और बहुत उच्च श्रेणियों में उर्वरक सामान्य अनुशंसित मात्रा के 25 से 50 प्रतिशत बढ़ाया या कम किया जाता है। देश में बृहद पैमाने पर चलाये जा रहे मृदा स्वास्थ कार्ड में भी उर्वरक सिफारिशें इसी प्रकार की जा रही है, किन्तु इन संस्तुतियों में कमी ये है कि ये रेटिंग फसल या मिट्टी की भिन्नता के बावजूद भी सब क्षेत्रों के लिए सामान है।

समीक्षात्मक दायरा आधारित संस्तुतियाँ

फसलों के लिए पोषक तत्वों का समीक्षात्मक दायरा की अवधारणा केट और नेल्सन (1965) द्वारा विकसित की गई थी। मिट्टी में उर्वरकों के एक सीमा से नीचे होने पर इसके उपयोग से आर्थिक लाभ प्राप्त करने की संभावना काफी अधिक होती है, जबकि मिट्टी में इस सीमा से ऊपर पोषक तत्व होने पर आर्थिक लाभ की संभावना कम हो जाती है या समीक्षात्मक सीमा मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों का वह स्तर है जिसके ऊपर पोषक तत्व की कमी फसलोत्पादन कम करने के प्राथमिक कारक नहीं रह जाते है। यह स्तर मिट्टी के प्रकार, फसलों और भिन्नता, मिट्टी परीक्षण विधियों और मौसमी विविधताओं के आधार पर निर्भर होता है। इस तरह के उर्वरक संस्तुति के तरीकों किसी खास स्थिति के लिए उर्वरक प्रयोग की मात्रा तय करना संभव नही होता है। यह अवधारणा मूल रूप से सूक्ष्म पोषक उर्वरक संस्तुति के लिए अधिक उपयुक्त है।

पोषक तत्व सूचकांक के आधार पर संस्तुति

इसमें उर्वरक की संस्तुति पार्कर एवं अन्य(1951) द्वारा बताई गई विधि जिसमें किसी विशेष क्षेत्र में किसी विशेष पोषक तत्व की समग्र उपलब्धता स्थिति को सारांशित करने पर आधारित है। मिट्टी नमूनों को उसमें उपलब्ध पोषक तत्वों के आधार पर निम्न, मध्यम और उच्च श्रेणियों में रख कर तत्व सूचकांक की गणना की जाती है।

$$\text{पोषण तत्व सूचकांक} = \frac{(NLx1)+(NMx2)+(NHx3)}{NT}$$

जहाँ NL, NM और NH क्रमशः निम्न, मध्यम और उच्च श्रेणियों में आने वाले मिट्टी के नमूने की संख्या है और नमूने की कुल संख्या है। यदि पोषक तत्व सूचकांक 1.5 से कम है, तो पोषक तत्व इस क्षेत्र में अप्रयाप्त है, 1.5 और 2.5 के बीच का मान, मध्यम और 2.5 से ऊपर को अधिक उर्वरक उपलब्धता के रूप में इंगित करता है। कई परीक्षणों से यह पाया गया कि ये सीमाए मध्यम वर्ग को अनुचित रूप से अधिक महत्व देती है और इन सीमाओं को संशोधित किया गया। रामोर्थी और बजाज ने कम पोषक तत्व के लिए 1.67 को कम, मध्यम के लिए 1.67 से 2.33 और उच्च उर्वरक स्थिति के लिए 2.33 अधिक का मान सुझाया। इस प्रकार की संस्तुतियों में किसी खास क्षेत्र में पोषक तत्व भिन्नता को ध्यान में नही रखा जाता है और ये उर्वरक संस्तुति स्थिति के सकल सामान्यीकरण पर आधारित है।

फसल अनुक्रम के लिए संस्तुतियाँ

एक फसल अनुक्रम की उर्वरक आवश्यकताओं को पूरा करना, व्यक्तिगत फसलों की उर्वरक प्रबंधन की तुलना में अधिक महत्तवपूर्ण है। इससे हमें फसल की आवश्यकताओं को तय करने में खेत में बचे हुए उर्वरक तथा प्राकृतिक रूप से उपलब्ध होने वाले पोषक तत्वों का ध्यान रखा जा सकता है। सहजीवी नेत्रजन निर्धारण के अतिरिक्त लाभ के कारण (दाल) फलियाँ आधारित फसल अनुक्रमों को कम नेत्रजन उर्वरक की आवश्यकता होती है। इसके अलावा एक अनुक्रम की पहली फसल द्वारा फॉस्फोटिक उर्वरकों का उपयोग आम तौर पर कम होता है और यह दूसरे फसल के लिए उपलब्ध हो पाता है क्योंकि इस हास्य क्षरण को छोड़कर किसी भी अन्य प्रक्रिया से नही होता है। उर्वरक संस्तुतियों में उपयुक्त समायोजन फसल की आवश्यकताओं, प्रतिक्रियाओं और फसल अनुक्रम में अवशिष्ट प्रभाव का ध्यान रखा जाता है। फसल अनुक्रम में कार्बनिक/जैविक या हरी खाद फसल का उपयोग पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि करने में भी मदद करता है। इस पद्धति में फसल को काटने के बाद मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों का अंदाजा लगाने हेतु कुछ उपलब्ध विधियों का उपयोग किया जा सकता है, जिसको ध्यान में रख कर और प्रारंभिक मृदा परीक्षण मूल्यों के आधार पर पूरे फसल अनुक्रम के लिए उर्वरक संस्तुति की जा सकती है।

लक्षित उपज के आधार पर संस्तुतियाँ

फसल उत्पादन और पोषक तत्वों के उपयोग के बीच एक महत्तवपूर्ण सकारात्मक एवं रैखिक संबंध पाया गया है। यह रैखिक संबंध ही प्रारंभिक रूप से ट्रोग द्वारा बताये गए लक्षित उपज अवधारणा का आधार है। राममूर्ति एवं अन्य ने इसी अवधारणा को प्रस्तुत किया जिससे कि उच्च पैदावार वाली फसलों एवं किस्मों के लिए भी उर्वरक की संस्तुति की जा सके। इसके लिए आवश्यक मापदंड है i) पोषक तत्वों की आवश्यकता (किग्रा/क्विंटल) अनाज उत्पादन के लिए (ii) मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता (iii) मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों (cs) का प्रतिशत योगदान और (iv) उर्वरक द्वारा डाले गए पोषक तत्वों (CF) का प्रतिशत योगदान। उर्वरक संस्तुतियों के लिए

विभिन्न प्रकार की मिट्टी, फसल किस्मों, मिट्टी परीक्षण फसल प्रतिक्रिया सहसंबंध पर अखिल भारतीय समन्वय अनुसंधान परियोजना के कई आँकड़े एकत्रित किये गए है। इस दृष्टिकोण के आधार पर की गई अनुशंसा अधिक सुदृड़, मात्रात्मक, सटीक और वैज्ञानिक मानकों पर आधारित है क्योंकि, इसमें मिट्टी और पौधे दोनों के विश्लेषण शामिल है। इस अनुमोदन का लाभ यह है कि एक किसान अपने संसाधन एवं प्रबंधन व्यवस्था के अनुसार उपयुक्त उपज लक्ष्य चुन सकता है। ज्ञात हो कि उपज लक्ष्य एक संभावित अधिकतम सीमा के अंदर हो। इन सिफारिशों पर प्रयोगात्मक शोध और किसानों के खेतों से प्राप्त अनुभव से यह आँका गया है कि उपज लक्ष्य 10 प्रतिशत विचलन के भीतर प्राप्त किया जा सकता है। इन संस्तुतियों में मिट्टी और फसल उत्पादन के लिए उचित पोषक तत्व की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है जैसे (i) उर्वरकों के प्रभावी उपयोग के अनुसार मिट्टी की उर्वरता और फसल की आवश्यकता, (ii) उर्वरक की कमी के तहत उर्वरक का चुनाव (iii) फसल प्रणाली में मिट्टी की उर्वरता का रख–रखाव (iv) मिट्टी की उर्वरता पोषक तत्वों का उपयोग करने में फसलों और फसल किस्मों की सापेक्ष क्षमता के दृष्टिकोण से उपयुक्त फसल चक्र की पहचान और (v) उपज लक्ष्यीकरण और मिट्टी पोषक तत्व सूचकांक के आधार पर क्षेत्रवार उर्वरक संस्तुतियाँ ने गेंहूँ, बाजरा और सरसों की आशाजनक उच्च पैदावार वाली कुछ किस्मों के लिए निम्नलिखित बुनियादी आँकड़े उपलब्ध कराये है:–

गेहूँ, बाजरा और सरसों की उच्च पैदावार वाली किस्मों के लिए बुनियादी आँकड़े

फसल पोषक तत्व	लक्षित उपज के लिए आवश्यकता (किग्रा/क्विंटल उपज)	मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों का योगदान (%)	डाले जाने वाले उर्वरक का योगदान (%)
गेहूँ			
नत्रजन	2.43	24.7	56.6
फोस्फेट	0.87	60.4	23.0
पोटाश	2.83	33.3	121.3
बाजरा			
नत्रजन	3.65	20.1	52.4
फोस्फेट	1.50	54.9	26.2
पोटाश	4.97	29.4	127.1
सरसों			
नत्रजन	4.97	29.3	67.1
फोस्फेट	1.86	44.4	29.9
पोटाश	5.23	27.3	84.2

गणना

उर्वरक (किग्रा) = [(लक्षित उपज (क्वि) *पोषक की आवश्यकता (किग्रा/क्वि) – मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व (किग्रा/है) * मिट्टी से योगदान (%)/100)] *100/ उर्वरक का योगदान (%)

उदाहरण: मिट्टी में उपलब्ध नत्रजन : 100 किग्र/हे, फोस्फेट (P_2O_5) : 20 किग्रा/हे और पोटाश (K_2O) :100 किग्रा/हे तो 40 क्विंटल गेहूँ उपज लक्ष्य हेतु कितना नत्रजन (N), फोस्फेट (P_2O_5) और पोटाश (K_2O) उर्वरक के रूप में उपयोग करना है। (ऊपर सारणी देखे)

उर्वरक द्वारा उपयोग हेतु नत्रजन की मात्रा = (40*2.43–100*24.7/100)/56.6 = 128.1 किग्रा/हे.

उर्वरक द्वारा उपयोग हेतु फोस्फेट (P_2O_5) की मात्रा = (40*0.87–20'60.4/100)*100/23.0 = 99 किग्रा/हे.

उर्वरक द्वारा उपयोग हेतु पोटाश (K_2O) की मात्रा = (40*2.83–100*33.3/100)*100/121.3 = 66 किग्रा/हे.

ध्यान रहें अगर मिट्टी परीक्षण का परिणाम फॉस्फोरस (P) तथा पोटेशियम (K) के रूप में हो तो उसे 2.29 तथा 1.204 से गुना कर फोस्फेट (P_2O_5) और पोटाश (K_2O) के रूप में बदले, इसी तरह अगर उर्वरक में पोषक तत्व अगर फोस्फेट (P_2O_5) और पोटाश (K_2O) के रूप में हो तो उसे 2.29 तथा 1.204 से विभाजित कर फॉस्फोरस (P) तथा पोटेशियम (K) के रूप में जाना जा सकता है।

पोषक तत्वों के लिए उर्वरक की गणना भी महत्तवपूर्ण है, अगर उर्वरक में पोषक तत्व की मात्रा ज्ञात हो तो दिए गए पोषक तत्वों के हिसाब से उर्वरक के मात्रा की गणना की जा सकती है।

ऊपर दिये गए उदाहरण जिसमें नेत्रजन 128.1 किग्रा/हे फोस्फेट:99 किग्रा/हे एवं पोटाश (K_2O) :66 किग्रा/हे की

कुछ महत्वपूर्ण उर्वरक एवं उनमें पोषक तत्वों की मात्रा (%)

उर्वरक	नत्रजन	फोस्फेट	फोस्फोरस	पोटाश	पोटैशियम
डी.ए.पी	18	46	20.8	0	0
यूरिया	46	0	0	0	0
एम. ओ. पी.	0	0	0	60	50
एस एस पी	0	16	7	0	0
अमोनियम सल्फेट	20	0	0	0	0
कैल्शियम अमोनियमनाईट्रेट	25	0	0	0	0

आवश्यकता है और अगर उर्वरक यूरिया, डी.ए.पी एवं एम.ओ. पी के रूप में उपलब्ध हो तो उर्वरक के मात्रा की गणना इस प्रकार की जा सकती है:

- सबसे पहले फॉस्फेट के आवश्यकता के अनुसार डी.ए.पी की मात्रा निकाली जाती है।
- 99 किग्रा फोस्फेट (अथवा 43.23 किग्रा. फॉस्फोरस) के लिए डी.ए.पी की मात्रा = 99*100/46= 215.21 किग्रा.
- अब 215.21 किग्रा. डीएपी में नेत्रजन की मात्रा = 215.21*18/100 = 38.73 किग्रा
- नत्रजन अलग से डालने की मात्रा = 128.1–38.73 = 89.36 किग्रा
- 89.36 किग्रा. नत्रजन के लिए यूरिया की मात्रा 89.36'100/46= 194.24 किग्रा.
- 66 किग्रा पोटाश (अथवा 54.78 किग्रा. पोटेशियम) के लिए एम.ओ.पी की मात्रा =66*100/60 = 110 किग्रा.

* = x

कुछ फसलों के लिए उर्वरकों की आम संस्तुतियाँ

क्रमांक	फसलों के नाम	नत्रजन (किग्रा/हेक्ट.)	फॉस्फोरस (किग्रा/हक्ट.)	पोटेशियम (किग्रा/हेक्ट.)	सल्फर (किग्रा/हेक्ट.)
1	गेहूँ	120.0	60.0	40.0	
2	धान	120.0	60.0	40.0	
3	मक्का	120.0	60.0	40.0	
4	जौ	60.0	30.0	30.	
5	बजरा	80 0	40 0	20 0	

क्रमांक	फसलों के नाम	नत्रजन (किग्रा/हेक्ट.)	फॉस्फोरस (किग्रा/हेक्ट.)	पोटेशियम (किग्रा/हेक्ट.)	सल्फर (किग्रा/हेक्ट.)
6	उड़द	18.0	46.0	0.0	
7	चना	18.0	46.0	0.0	
8	मसूर	18.0	46.0	0.0	20.0
9	सरसों	80.0	65.0	20.0	
10	तिल	60.0	30.0	0.0	
11	पीली सरसों	60.0	40.0	25.0	
12	आलू	120.0	100.0	40.0	
13	गन्ना	180.0	80.0	60.0	60.0
14	टमाटर	120.0	60.0	40.0	
15	बैगन	80.0	40.0	40.0	

उर्वरकों की उपयुक्त संस्तुति एवं सही मात्रा के उपयोग से न केवल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है बल्कि लागत कम होने के साथ–साथ पर्यावरण को भी स्वस्थ रखा जा सकता है।

भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है। हिंदी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है।

– नरेंद्र मोदी

पर तुम न आये

लता भंवर

गरमी आयी, सरदी आयी
वर्षा आयी, सब ऋतु आयी
पर तुम न आये ।

होली आयी, दिवाली आयी
राखी आयी, सब त्यौहार आये
बस तुम ही न आये।

जा–जा कर सब लौट हैं आये
बस तुम ही न आये।

भाई तुम गये हो जब से
माँ तो बूढ़ी हो गई एकदम से।
सूना हुआ मायका भी तबसे
दूर हो गये हो तुम हम सबसे।

उनकी सूनी आँखों में तुम्हारा
ही गम दिखता है
तुम्हारी ही बातों में अब उनका
हर एक दिन कटता है।

सपनों ही में आ जाओ तुम
सूने मन को महकाओ तुम
वहीं जी भर के देख लूँगी
फिर बनना तुम भाई मेरे
यही प्रभु से प्रार्थना करूँगी।

अगले जनम जो आओगे तुम,
फिर जल्दी ना जाने दूँगी ,
भाई बिना हैं बहनें अधूरी
बस यही बात प्रभु से कहूँगी ।

किसानों की आय दोगुनी करने की उपयोगी विधियाँ

मुकेश कुमार मीना, राजीव रंजन एवं कर्मवीर

किसान देश की जीवन रेखा है, देश की लगभग आधी आबादी पूरी तरह कृषि पर निर्भर है और किसी भी देश का विकास उसके कृषि क्षेत्र के विकास के बिना अधूरा है। देश की खाद्य सुरक्षा को सतत आधार पर सुनिश्चित करने का श्रेय हमारे देश के अन्नदाताओं को ही जाता है। आज वस्तुस्थिति यह है कि भारत ना केवल बहुत से कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भर, आत्म संपन्न है वरन बहुत से उत्पादों का निर्यातक भी है। भारत सरकार ने 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने का एक बड़ा लक्ष्य रखा है। इसे पूरा करने के लिए सरकार कम लागत में अधिक पैदावार, मृदा एवं जल संरक्षण तकनीक पर जोर दे रही है। इसमें कोई संदेह नही है कि यह एक बड़ा महत्वपूर्ण उद्देश्य है और इसके लिए सरकार द्वारा बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता है। अतः, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए माननीय प्रधानमंत्री जी ने सात सूत्रीय रणनीति का आहवान किया है जिसमें शामिल है पर्याप्त संसाधनों के साथ सिंचाई पर विशेष बल, प्रत्येक खेत की मिट्टी गुणवत्ता के अनुसार गुणवान बीज एवं पोषक तत्वों का प्रावधान, कटाई के बाद फसल नुकसान को रोकने के लिए गोदामों और कोल्ड चैन में बड़ा निवेश, खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से मूल्य संवर्धन को प्रोत्साहन, राष्ट्रीय कृषि बाजार का क्रियान्वयन एवं सभी 585 केंद्रों पर विकृतियों को दूर करते हुए ई प्लेटफार्म की शुरूआत, जोखिम को कम करने के लिए कम कीमत पर फसल बीमा योजना की शुरूआत और डेयरी, पशुपालन, मुर्गी पालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन, मेड़ पर पेड़ बागवानी जैसी सहायक गतिविधियों को बढ़ावा देना। कुछ उपयोगी कृषि तकनीकी जो कि किसानों की आय में बढ़ोत्तरी में लाभप्रद हो सकती हैं वे निम्नवत् हैं:

- **समन्वित कृषि प्रणाली:** इस कृषि प्रणाली के द्वारा भारत के पशुपालन से संबंधित उत्पादों का अधिक से अधिक उत्पादन किया जा सकता है। इसके द्वारा भारत की वर्तमान जनसंख्या के अनुसार खाद्य पदार्थों की माँग को काफी हद तक पूरा किया जा सके। इस प्रणाली से प्राप्त होने वाले जैविक खाद के द्वारा उत्पादन को बढ़ाया जा सकता हैं। समन्वित कृषि प्रणाली में पशुपालन के घटक जैसे पोल्ट्री, सूकरपालन, मत्स्यकी इत्यादि के उत्पाद, पोषक पदार्थ, जैसे प्रोटीन, वसा, खनिज–लवण, विटामिन से भरपूर होते हैं, जो कि अच्छे स्वस्थ्य के लिए आवश्यक है। समन्वित कृषि प्रणाली में एक घटक के उत्पादन के पश्चात् बचने वाला अवशेष पदार्थ दूसरे घटक के उत्पादन के लिए लागत या कच्चे पदार्थ का कार्य करता है, अतः इस व्यवस्था से कृषि फार्म की कुल उत्पादन लागत कम हो जाती है।
- **संरक्षित खेती:** फसल का उत्पादन मुख्य जैविक व अजैविक कारकों से बचाते हुए, सुरक्षा प्रदान करते हुए संरक्षित करना है। संरक्षित खेती को अपनाना मुख्यतः कई महत्तवपूर्ण बातों पर निर्भर करता है जैसे कि किन–किन बागवानी फसलों में संरक्षित खेती करना चाहते हैं? वहाँ के वातावरण की क्या परिस्थितियाँ हैं? संरक्षित खेती अपनाने वाले व्यक्ति के पास क्या पर्याप्त साधन उपलब्ध है? सरकार की योजनाएँ संरक्षित खेती के प्रति क्या है और संरक्षित खेती से प्राप्त उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद आदि को बेचने के लिए कौन से बाजार आसानी से उपलब्ध हो सकते है? संरक्षित खेती की विभिन्न संरचनाएँ अर्ध वातानुकूलित ग्रीन हाउस, प्राकृतिक वायु संभावित ग्रीन हाउस, वर्क इन टनल, नेट हाउस, प्लास्टिक लो टनल, शेड नेट उत्पादन प्रौद्योगिकी इत्यादि हैं।
- **सघन बागवानी:** एक निश्चित क्षेत्रफल में आधुनिक प्रबंधन के सामंजस्य से अधिक से अधिक पौधों का समावेश करते हुए प्रति इकाई क्षेत्रफल में गुणवत्ता युक्त, अधिक उत्पादन प्राप्त करना सघन बागवानी कहलाता है। बागवानी एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें किसान अपनी भूमि से अधिक से अधिक

आय प्राप्त कर सकते है। कृषकों द्वारा प्रति इकाई क्षेत्रफल से गुणवत्ता युक्त अधिकतम पैदावार लेने हेतु कृषि विविधीकरण किया जाता है।

- **पोषक तत्व प्रबंधनः** मृदा उर्वरता का संतुलन इस प्रकार से बनाया जाये कि फसल की माँग एवं आवश्यकता के अनुसार पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें, जिससे अधिक से अधिक (वांछित) उपज मिल सके और मृदा स्वस्थ सुरक्षित बना रहे। इसके लिए आवश्यकतानुसार अकार्बनिक एवं कार्बनिक स्त्रोतों से फसल को सभी तत्वों का निश्चित अनुपात में उपलब्ध कराना आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक तत्व का पौधों के अंदर अलग–अलग कार्य एवं महत्तव है जो विभिन्न अवस्थाओं में पूर्ण होता है। कोई एक तत्व दूसरे तत्व का पूरक नहीं है। यह संतुलन बिगड़ने पर उत्पादन सीधे प्रभावित होता है। इस व्यवस्था/तकनीकी को एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की संज्ञा दी गई है।
- **गहरी जुताईः** खरीफ फसल की बुवाई से पहले खेत की एक बार जुताई की जाती है, जिससे मिट्टी हलकी हो जाती है तथा घास और खरपतवार नष्ट हो जाते है। इससे कीड़े, उनके अंडे व बिमारियों के जीवाणु ऊपर आकर तेज धूप से नष्ट हो जाते है। मिट्टी में वायु का बेहतर संचार होता है तथा मिट्टी की जलधारण क्षमता भी बढ़ जाती है। गहरी जुताई मॉनसून आने से 15 दिन पहले करें जिससे धूप में घास आसानी से सूख सके तथा वायु का प्रवाह मिट्टी में आसानी से हो सके। इसलिए किसान जून माह में खेत की जुताई जरूर करें।
- **मिट्टी परीक्षण के बाद उर्वरक प्रयोगः** मिट्टी में उपलब्ध तत्वों की जानकारी करना ही मृदा परीक्षण कहलाता है। मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं मे खेत की मिट्टी का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है तथा खेत की माँग एवं फसल की आवश्यकता के अनुसार उर्वरक प्रयोग के सुझाव दिए जाते हैं। खेत में जिस तत्व की कमी फसल विशेष के लिए होती है उसकी मात्रा की पूर्ति संतुलित उर्वरक प्रयोग करके सुनिश्चित की जाती है। संतुलित उर्वरक प्रयोग करने से पौधों मे प्राकृतिक प्रकोप सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है तथा रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। मिट्टी परीक्षण की सबसे आवश्यक बात है खेतों में मिट्टी के वैज्ञानिक विधि से नमूने लेने चाहिए, क्योंकि ना केवल अलग–अलग खेत की मृदा की भिन्नता हो सकती है बल्कि एक ही खेत में अलग–अलग स्थानों की मृदा में भी विभिन्नता हो सकती है। परीक्षण के लिए खेत की मृदा का नमूना वैज्ञानिक विधि से लिया जाना चाहिए, जिससे मिट्टी का सटीक रूप से परीक्षण हो सके।
- **परंपरागत एवं जैविक खेती :** जैविक खेती, खेती की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें उत्पादन के लिए प्रयोग किए जाने वाले घटकों का आधार जीव अंश से उत्पादित हो और पशु, मानव एवं भूमि के स्वास्थ्य को स्थिरता प्रदान करते हुए स्वच्छता के साथ पर्यावरण को भी पोषित करे। जैविक खेती करने से लागत कम आती है क्योंकि इसमें जैविक खाद, गोबर की खाद, जैविक कीटनाशक, नाडेप कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट हरी खाद, जैविक उर्वरक, मुर्गी खाद, गोमूत्र, नीम के पत्ती का घोल का प्रयोग होता है। जैविक खेती से भूमि, पशु, मानव एवं लाभदायक सूक्ष्म जीवों का स्वास्थ्य सुधरता है और मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है, पर्यावरण प्रदूषण कम होता है, पानी की खपत कम होती है, रोजगार में वृद्धि होती है, पशु एवं मानव श्रम का उपयोग होता है, रसायनों का दुष्प्रभाव पशु, पक्षी, मानव, भूमि, जल, हवा आदि पर कम होता है।
- **फसल चक्रः** विभिन्न फसलों को किसी निश्चित क्षेत्र पर एक निशचित क्रम से, किसी निश्चित समय में बोने को सस्य आवर्तन (सस्यचक्र या फसल चक्र (क्रॉप रोटेशन)) कहते है। इसका उद्देश्य पौधों के भोज्य तत्वों का सदुपयोग तथा भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं में संतुलन स्थापित करना है। यानि एक वर्ष में खेत में दो या दो से अधिक फसलों को एक के बाद एक योजना बनाकर उगाना।
- **प्रति बूँद अधिक फसलः** खेती से जुड़े हर व्यक्ति के लिए यह जानना आवश्यक है कि किस फसल में कब, कैसे और कितनी सिंचाई की जाए कि उससे

ज्यादा उत्पादन लिया जा सके, इसकी जानकारी के अभाव में खेती में उचित जल प्रबंधन नहीं हो पाता है और किसानों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। अधिक फसल उत्पादन हेतु फसलों का चयन पानी की उपलब्धता के आधार पर किया जाना चाहिए। सूक्ष्म सिंचाई पद्धति जैसे टपक सिंचाई, फव्वारा सिंचाई एवं रेनगन के माध्यम से किया जाना चाहिए।

मिट्टी और जल संरक्षण तकनीक

किसानों द्वारा भूमि क्षरण को नियंत्रित करने के जैविक और यांत्रिक उपायों (मृदा एवं जल संरक्षण) का इस्तेमाल किया जाता है। साथ ही मिट्टी की उर्वरता में सुधार करने के लिए दोनों कार्बनिक और अकार्बनिक उर्वरक का भी प्रयोग होता है। प्रमुख यांत्रिक उपायो जैसे कि मिट्टी का बाँध, पत्थर बाँध और गली नियंत्रण के लिए शाखा काष्ठ चैक डैम है। इन यांत्रिक उपायों और मिट्टी की उर्वरता में सुधार के अलावा, कृषि वानिकी और इंटरक्रोपपिंग की तरह कुछ मृदा एवं जल संरक्षण उपाय किसानों द्वारा प्रयोग में लाये जाते है जो कि सीधे पशुओं के लिए चारा उपलब्ध कराने और समग्र फसल उत्पादन में वृद्धि से संबंधित है। भूमि स्तरीय और चिकनापन, स्थाई कंटूर बंद, सुरक्षा फसलें, मिट्टी के स्वास्थय और क्षरण नियंत्रण के लिए हरी खाद, परिसंचरण जाँच बाँध, स्थिरीकरण के लिए गली प्लग, घिरी हुई कंटूर खाई, रेनगन के माध्यम से सूक्ष्म सिंचाई अन्य उपयोगी जल और मृदा संरक्षण तकनीके हैं (फोटो)। प्रमुख मृदा एवं जल संरक्षण तकनीक और उनका विवरण नीचे तालिका में दिया गया है।

किसानों द्वारा अपनायी जाने वाली मृदा एवं जल संरक्षण तकनीक

संरक्षण तकनीक	विवरण
फार्म क्षेत्र की खाद का प्रयोग	गाय के गोबर, गोमूत्र, खेती के अपशिष्ट, पुआल और अन्य डेयरी कचरे का उपयोग कर तैयार की गई खाद
कृषि वानिकी	फसलों के साथ पेड़ों और झाड़ियों को पशु चारे एवं ईंधन हेतु उगाना
फसल का चक्रीकरण	मौसम के अनुसार से एक विशेष भूमि पर फसलों का अनुक्रम बदलना
ग्रीष्मकालीन जुताई	गर्मियों में जुताई से मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ना, खरपतवार का नाश, भूमि में उपस्थित हानिकारक कीटों,उनके अण्डों का नाश एवं कीटों से फैलने वाले रोगों से बचाव, जुताई से मिट्टी के सौर्यीकरण से कवक एवं जीवाणु जनित रोगों से बचाव
अंतः वर्तीय फसल	एक ही समय में एक ही क्षेत्र में दो या दो से अधिक फसले बोना
फार्म तालाब/किसी अन्य जल संचयन व्यवस्था	सिंचाई के लिए पानी भंडारण संरचना
फली फसलों	फसलों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि
ढलान भर में खेती	खेती की ढलान आर–पार खेती करने से जल बहाव द्वारा मृदा क्षरण में कमी
मिट्टी के बाँध	मिट्टी के बाँध का निर्माण समोच्च रेखा के साथ
सीढ़ीदार खेत	खड़ी ढलान पर खेती के लिए छतों का बनाना
+घास	अपवाह वेग धीमा करने के लिए (ढलानों को काट कर) मिट्टी को अपने स्थान पर बनाए रखने के लिए उपयुक्त अंतराल पर मेड़ बनाने के साथ घास के साथ लगाए
घास–पात से ढकना	सूखी वनस्पति का प्रयोग कर मिट्टी को ढक कर वाष्पीकरण को कम करने और नमी बनाए रखने, अपवाह द्वारा मिट्टी का कटाव को कम करने
रिज और लम्बे कुंड	वैकल्पिक रिज लकीरे और कुंड जल संरक्षण के लिए बनाना
ट्रैन्चिंग (खाई/गड्ढ़ा)	कंपित और निरंतर खाइयों को अपवाह द्वारा लाई गई मिट्टी को एकत्रित करने और मिट्टी की नमी में वृद्धि के लिए बनाया जाता है।

उपयुक्त मृदा एवं जल संरक्षण तकनीकियाँ

भूमि समतली करण, उन्नत खेती हेतु

स्थिर समोच्च बंध

आवरण फसलें

हरी फलवार हेतु भरण का प्रयोग

वर्षा जल संचय, सिंचाई हेतु

तालाब–भूजल पुर्नभरण हेतु

परकोलेशन चेक बंध

चेक बंध की नाली में रोक मृदा क्षरण रोकने हेतु

कंपित समोच्च खाइयाँ

खस घास का अवरोध

रेन गन से सूक्ष्म सिंचाई

कृषि वानिकी एवं वनीकरण

भारतीय सभ्यता की अविरल धारा प्रमुख रूप से हिंदी भाषा से ही जीवंत तथा सुरक्षित रह पाई है।

– अमित शाह

कृषि वानिकी द्वारा कीट एवं रोग नियंत्रण

विभा सिंघल[1], तृषा रॉय[2], ज्योर्तिमय घोष[3], शीराज भट्ट[4] एवं चरण सिंह[5]

कृषि सघनता एवं वनों का कटाव जैवविविधता और पारिस्थतकी तंत्र सेवाओं में अवरोध ह्रास के प्रमुख कारण है। कृषिवानिकी द्वारा वृक्षों के अंतगर्त क्षेत्रफल को बढ़ाया जा सकता है जिससे वनोन्मूलन द्वारा पर्यावरण पर हो रहे नकारात्मक प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है और हमारे बहुमूल्य पारिस्थतिकी तंत्र की सुरक्षा भी की जा सकती है। पूर्व में किए गए बहुत से शोधकार्य इस बात की पुष्टि करते है कि कृषिवानिकी जैवविविधता संरक्षण, मृदा स्वास्थय में सुधार और सूक्ष्म वातावरण में सकारात्मक बदलाव के अतिरिक्त और अन्य प्रकार से लाभदायक है। भारत तथा अन्य विकासशील देशों में कृषिवानिकी सीमांत किसानों को मृदा गुणवत्ता में सुधार द्वारा, मृदा तथा जल क्षरण को कम करके खाद्य सुरक्षा तो प्रदान करती ही है साथ ही ईंधन के लिए लकड़ी, इमारती लकड़ी, पशुओं के लिए चारा, फल–फूल तथा अनेक प्रकार के अन्य वन उत्पाद भी उपलब्ध करवाती है। इस बात के प्रमाण मिल रहे है कि कृषि वानिकी की कीट नियंत्रण में भी अहम भूमिका है।

कृषि वानिकी के अंतर्गत जब कृषि तंत्र में वृक्षों को सम्मिलित किया जाता है तो पर्यावरण जटिल हो जाता है और कृषि तंत्र में प्राकृतिक कीटों की प्रचुरता और विविधता दोनों अधिक हो जाती है। यह भी देखने को मिला है कि वृक्ष कीटों के लिए लाभकारी भी होते है, क्योंकि वृक्ष सूक्ष्म वातावरण को सुधार कर सीधे–सीधे कीटों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बना देते है या फिर परोक्ष रूप से पेड़ कीटों के लिए पोषक तत्वों तथा जल की आवश्यकता को पूरा करके भी कीटों को लाभ पहुँचाते हैं। पिछले कुछ शोधपत्रों के विश्लेषण से यह देखने को मिला है कि जैव विविधता के परिदृश्य में किस प्रकार से कीट या प्राकृतिक शत्रुओं की विविधता में बढ़ोत्तरी से कीटों तथा कीटों द्वारा फसलों में हुई हानि में कमी होती है। अपेक्षाकृत शत्रु कीटों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है। प्राकृतिक परिदृश्य शत्रु कीटों के लिए निश्चित रूप से लाभदायक है परंतु इनका प्रभाव कीटों पर विविध है। कुछ अन्य शोध पत्रों के अनुसार कृषिवानिकी का कीट नियंत्रण पर प्रभाव विविध एवं प्रसंग पर निर्भर करता है।

बहुवर्षीय कृषि प्रणाली में कृषिवानिकी के अंतर्गत कीटों की प्रचुरता घट जाती है। यह भी प्रायः देखा गया है कि कृषिवानिकी से कीट और रोग से फसल में होने वाली हानि को कम किया जा सकता है। गत वर्षों में होने वाले शोध से यह पता चला है कि किसी भी कृषिवानिकी प्रणाली में जितना अधिक जटिल पर्यावरण होगा उतना ही बेहतर उस प्रणाली में कीट नियंत्रण होगा। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया है कि कृषि वानिकी द्वारा कीट नियंत्रण परिस्थिति पर निर्भर करता है। कीट वृक्ष एवं फसल का प्रकार भी कृषिवानिकी के अंतर्गत कीट नियंत्रण के मुख्य कारक है।

खरपतवार

कृषिवानिकी प्रणाली में खरपतवार कम होते हैं। इसके दो कारण माने जाते हैं। एक तो वृक्षों के पत्ते, कोमल टहनियाँ जीवाणु द्वारा अपघटित हो कर मृदा की गुणवत्ता में सुधार करते हैं। दूसरा वृक्षों की छाया को खरपतवार नियंत्रण का मुख्य कारण माना गया है। गतवर्षों में हुए शोध इस बात की पुष्टि करते है कि मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता खरपतवार नियंत्रण में एक अहम भूमिका निभाती है। इस तथ्य का इस प्रकार भी विश्लेषण किया जा सकता है कि मृदा की उर्वरकता से फसल का अच्छा विकास होता है जिससे कि फसल प्रतिस्पर्धा में खरपतवार तेजी से पनप नहीं पाते हैं। वृक्षों के जीवाशं पदार्थ मृदा के ऊपर एक आवरण बना देता है जिससे खरपतवार का अंकुरण नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

[1,2,5]भा.कृ.अनु.प., भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून
[3]भारतीय प्राकृतिक राल एवं गोंद संस्थान, राँची
[4]भारतीय चारागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, श्रीनगर

कीट एवं रोग

कृषि वानिकी की कीट नियंत्रण में भूमिका फसल के प्रकार पर निर्भर करती है। बहुवर्षीय कृषिवानिकी प्रणाली में वार्षिक फसलों के अपेक्षाकृत कीटों द्वारा फसलों को नुकसान कम होता है। बहुवर्षीय प्रणाली में यह संभव है कि वृक्षों की निरंतर छाया कीटों की संख्या जो कम करने में सहायक होती है। वृक्षों की छाया कीटों को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। कीटों के प्राकृतिक शत्रु, वृक्षों की छाया में अधिक प्रभावशाली हो जाते है। कीटों की विकास दर भी छाया में कम हो जाती है, इसके अतिरिक्त वृक्षों की छाया फसलों से निकलने वाले रासायनिक घटकों की जैव रासायनिक संरचना एवं उत्सर्जन को भी प्रभावित करती है, जिससे कि मादा कीट को अंडनिक्षेपण के लिए स्थान निर्धारित करने में कठिनाई होती है।

कुछ शोध पत्रों के विश्लेषण से यह भी विदित हुआ है कि कृषिवानिकी से मक्का के कीटों तथा उनसे होने वाले हानि को कम किया जा सकता है। मक्का की हैजग्रो (Hedgerow) प्रणाली के साथ जब सहखेती की जाती है तो तना भेदक उल्लेखनीय रूप से कम होते है तथा मक्का की एकल फसल में अपेक्षाकृत संक्रमण भी कम होता है। इस प्रणाली में मक्का की फसल में होने वाली हानि मक्का की एकल खेती की तुलना में कम होती है।

अन्य शोध पत्रों में यह भी देखा गया है कि कृषिवानिकी प्रणाली में कीटों की प्रचुरता में बढ़ोत्तरी होती है, इसलिए कृषिवानिकी का कीट नियंत्रण पर प्रभाव केवल इसी बात पर निर्भर नहीं करता कि फसल कौन से प्रकार की है अपितु अन्य कारक जैसे कि कीट का प्रकार, सूक्ष्म वातावरण एवं कीट अनुकूल परिस्थितियाँ भी कृषिवानिकी प्रणाली द्वारा कीट नियंत्रण को प्रभावित करते हैं।

प्राकृतिक शत्रु कीट

कृषिवानिकी आमतौर पर प्राकृतिक शत्रुओं की प्रचुरता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए कॉफी बैरी छेदक को नियंत्रित करती हैं। विविध पारंपरिक कृषिवानिकी प्रणाली में गहन प्रणाली की तुलना में भक्षय–भक्षक संबंध अनुपात अधिक होता है। कृषिवानिकी प्रणाली में मृदा में सूक्ष्मजीवों की प्रचुरता अधिक होती है, इसका कारण यह है कि वृक्षों से मिलने वाला जीवांश पदार्थ मृदा को उपजाऊ बनाता है, जिससे कि मृदा में पाए जाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं के निर्वाह हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ बनती है। उहाहरण के लिए मक्का आधारित कृषिवानिकी प्रणाली में एकल मक्का खेती की अपेक्षा मृदा में कीटों के अधिक प्राकृतिक शत्रु पाए जाते हैं।

कृषिवानिकी का कीट एवं रोग नियंत्रण पर प्रभाव देखने के लिए अधिकतर शोध मक्का तथा कॉफी पर हुए हैं, कृषिवानिकी के अंतर्गत मुख्य तौर पर कॉफी बैरी छेदक, मक्का तना भेदक एवं परजीवी खरपतवार पर अध्ययन हुआ है। कृषिवानिकी प्रणाली में परभक्षी चींटीयों पर भी शोध हुए हैं, किन्तु कृषिवानिकी का पादप रोगों, अनेक महत्वपूर्ण अपृष्ठवंशी कीटों तथा प्राकृतिक शत्रुओं पर प्रभाव का अभी तक गहन अध्ययन नहीं हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि कृषिवानिकी की कीट एवं रोग नियंत्रण में भूमिका स्थापित करने के लिए इस दिशा में और अध्ययन की आवश्यकता है।

बीते लम्हें

लता भंवर

कोई बीते हुए लम्हों से कह दे
इक बार फिर से आ जाये
चाहे आकर फिर से लौट जाये ।

जो छूट गया था लम्हा मुझसे
उसको मैं फिर से जी लूँगी।
जिसे याद मैं आज करती हूँ
वो बचपन फिर से जी लूंगी।

जो बिछड़ गये हैं संगी–साथी
उन सब से इक बार मिल लूँगी।
जो उधड़ गये थे रिश्ते तब
उन्हे प्रेम से मैं फिर सिल लूँगी।

वो छोटा सा घर मेरा
वो स्कूल, वो कॉलेज की गलियाँ
वो गलियाँ जो फिर मिल जायें
उनमें मैं फिर से घूमूँगी।

वो सखियों से बातें करना
वो लड़ना– झगड़ना आपस में
जो रूठ गई थी उस वक्त में
उस सखी को सॉरी कह दूँगी।

वो लम्हें जो फिर मिल जाये
तो कितना कुछ मुझे मिल जायेगा
बेरहम वक्त की धूल से
जो चेहरा धूमिल हो गया
वो चेहरा फिर से खिल जायेगा।

ये बीते लम्हे जो पंछी होते
तो पिंजरें में इनको रखती
बड़े जतन से पालती,
फिर कभी ना इनको जाने देती...
फिर कभी ना इनको जाने देती...

ISO 9001:2015

मृदा के सूक्ष्मजीवों पर गेहूँ के खरपतवारनाशी मैट्रीब्युजीन का प्रभाव

नवनीत पारीक, शिखर कौशिक, किरण पी रावेरकर, रमेश चन्द्रा एवं वी पी सिंह

उन्नीसवीं सदी के तापमान के आँकडे बताते है कि पिछले 100 साल मे पृथ्वी का औसत तापमान 0.8 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। इस तापमान का 0.6 डिग्री सेल्सियस तो पिछले तीन दशको मे ही बढ़ा है। इस संकट का सबसे बडा कारण सभ्यता, विकास और औद्योगिकीकरण के लिए कोयले और पेट्रोलियम पदार्थो जैसे जीवाष्म ईधन का अंधाधुंध उपयोग, जनसंख्या वृद्धि, जल का बेहिसाब उपयोग, वनों की अंधाधुंध कटाई, ओजोन परत का खतरे में पड़ना, जीव–जन्तुओं की विविधता का लगातार कम होना, ये सब ऐसे कारण हैं, जो विश्व की विविधता का मानव समुदाय के लिए भयाक्रांत है। सूखा, गर्म हवाएं (लू) चक्रवात, तूफान और झंझावात जैसी आपदाएं जल्दी–जल्दी आने लगी हैं और भविष्य में इनकी आवृत्ति एवं प्रचण्डता और अधिक होगी। कृषि उपज में प्रतिकूल परिवर्तन, गर्मियों में जलधारा में कमी, प्रजातियों का लोप और रोगवाही जीवाणुओं के प्रकार व मात्रा में वृद्धि इसके कारण हैं। वनों, खेतों और शहरों में नए–नए कीड़े–मकोड़ों का आतंक बढ़ा है, जिससे कीड़े–मकोड़े–जनित रोग बढ़ेंगें। जलवायु परिवर्तन का दुष्प्रभाव मनुष्यों के साथ वनस्पतियों और जीव जन्तुओं पर भी देखने को मिल रहा है। पेड़–पौधों पर फूल और फल समय से पहले लग रहे हैं। जानवर अपने क्षेत्रों से पलायन कर रहे है। जलवायु परिवर्तन से वास्तव में कितना प्रभाव होगा इस बारे मे निश्चित तौर पर कुछ कहना मुश्किल है परन्तु खाद्यान्न उत्पादन में कमी आ सकती है। चूंकि मृदा पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक हैं, इसलिये इन सब कारको का मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जलवायु के अनुसार मृदा का भी स्वरुप होता है। इसकी दशा भी जलवायु मे सहभागिता करती है। जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए फसल से अधिक उत्पादन लेने की आवश्यकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए फसल में खरपतवारनाशी द्वारा प्रतिस्पर्धा को कम करने की आवश्यकता है, जिससे फसल का उत्पादन बढ़ सके। परन्तु खरपतवारनाशी का प्रयोग उचित तथा संस्तुत मात्रा के साथ ही करने में यह लाभदायक है अन्यथा यह मृदा मे जाकर लाभ की जगह हानि पहुँचा सकता है।

दुनिया भर में एवं भारत में भी गेहूँ एक महत्वपूर्ण फसल के रूप में बहुतायत से उगायी जाती है। गेहूँ उत्पादन में मुख्य रूप से छोटे कद की अधिक उपज देने वाली किस्मों की बुवाई की जाती है। इन उच्च उपज देने वाली बौनी किस्मों के कम प्रतिस्पर्धात्मक प्रकृति के साथ–साथ उच्च पोषक तत्वों और पानी की आवश्यकता में वृद्धि हुई जिसके कारण यह खरपतवार के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। खरपतवार के कारण फसल उत्पादन की कुल हानि एक तिहाई है जोकि सभी कीटों के नुकसान से भी अधिक है। अतः इन किस्मों की उपज को बनाये रखने के लिये, उर्वरको का प्रयोग, सिंचाई तथा खरपतवारनाशी का प्रयोग किया जाता है।

धान–गेहूँ प्रणाली में खरपतवार एक महत्वपूर्ण सकल क्षेत्रीय उत्पादकता में गिरावट का महत्तवपूर्ण कारण है। फसलों की पूरी आनुवांशिक उपज क्षमता को साकार करने के लिए, उचित खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन को बनाए रखने तथा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी खरपतवार प्रबंधन नितान्त आवश्यक है। फसल में खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए सुलभ एव गुणक्ता युक्त खरपतवारनाशी का उपयोग आवश्यक है। किसान खरपतवारनाशी का प्रयोग खरपतवार नियंत्रण के लिए करते है। चूंकि खरपतवार रासायनिक रूप से तैयार किये जाते है और वर्तमान में इनका उपयोग बहुतायत में होने लगा है। खरपतवारनाशी के उपयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एंव जैविक लक्षणों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा ये मृदा को प्रदूषित कर देते है। मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता को बनाये रखना फसल उपज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु खरपतवारनाशी के प्रयोग से मृदा के परिस्थितिकी तंत्र पर दुष्प्रभाव पड़ता है। मृदा के सूक्ष्मजीव जोकि मृदा में होने

कृषि महाविद्यालय, गो0 बं0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर

वाली बहुत सी जैविक एवं किण्वक गतिविधियों के सहायक होते है, खरपतवारनाशी के उपयोग से इन मृदा के सूक्ष्मजीवों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके कारण मृदा में रहने वाले अनेकों प्रकार के सूक्ष्मजीवों की संख्या का सतुंलन बिगड़ जाता है। सूक्ष्मजीवों की आबादी मृदा में रहकर पोषक तत्व की पुर्नचक्रण तथा अपघटन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, वहीं खरपतवारनाशी न केवल खरपतवार, वरण सूक्ष्मजीवों पर, मृदा के महत्वपूर्ण कार्यो जैसे कि कार्बनिक पदार्थ का अपघटन, नाइट्रोजन चक्र, फास्फोरस चक्र, मीथेन ऑक्सीकरण आदि पर नकारात्मक प्रभाव डालते है।

सामग्री एवं कार्य पद्धति

इस पृष्ठभूमि के साथ, वर्तमान में मृदा में खरपतवारनाशी के प्रभाव को समझने के लिए एक ही समय पर एक अनुप्रयोग गो0ब0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, नारमन. ई. बोरलाग. फसल अनुसंधान केन्द्र, पन्तनगर पर तथा दूसरा अनुप्रयोग जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, के क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान स्टेशन, मध्य प्रदेश पर वर्ष 2014–15 में गेहूँ की फसल में मैट्रीब्युजीन 70% (धुलनशील चूर्ण) के साथ आयोजित किया गया। इस अनुप्रयोग में मैट्रीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) की अलग–अलग मात्रा को गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण एवं मृदा सूक्ष्मजीवों की संख्या पर प्रभाव के लिए प्रयोग किया गया।

मैटीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) की मात्रा निम्नलिखित दर से प्रयुक्त की गयी।

T1: मैटीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) प्रायोजक नमूना 200 ग्रा0/है0,

T2: मैटीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) प्रायोजक नमूना 250 ग्रा0/है0,

T3: मैटीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) बाजार नमूना– 250 ग्रा0/है0,

T4: क्लोडीनीफोप प्रोपर्जिल 15% (घुलनशील चूर्ण) मानक नमूना– 400 ग्रा0/है0,

T5: हाथ द्धारा की गयी निराई गुड़ाई,

T6: अनुपचारित,

T7: मैटीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) प्रायोजक नमूना /500 ग्रा0/है0,

खरपतवारनाशी का प्रयोग गेहूँ की बुवाई के 25–30 दिन पश्चात् किया गया। मृदा मे खरपतवारनाशी के मृदा के सुक्ष्मजीवों पर प्रभाव के तुलनात्मक अध्ययन हेतु मृदा के कुल तीन बार नमूने एकत्रित किये गये। मृदा का नमूना प्रायोगिक स्थान पर से तीन बार एकत्रित किए गए। इनमें से प्रथम नमूना खरपतवारनाशी के प्रयोग से पहले तथा दूसरा नमूना खरपतवारनाशी के प्रयोग के सात दिन पश्चात् व तीसरा मृदा नमूना फसल कटाई के दौरान लिया गया। प्रत्येक उपचारित क्यारी से मृदा का नमुना मृदा मे 0–15 सेमी0 गहराई से एकत्रित किया गया। एकत्रित मृदा नमूनो को प्रयोगशाला मे सूक्ष्मजीवों की संख्या का विश्लेषण के लिये प्रशीतक मे 4° सेल्शियस तापमान रखा गया जबतक की उनमें से जीवाणु, फफूँद एव एक्टीनोमाइसीटिज़ की संख्या की गणना का अवलोकन न कर लिया जायें।

मृदा मे सूक्ष्मजीवों की गणना सूक्ष्मजीवविज्ञान की एक महत्वपूर्ण, क्रमिक तनुकरण द्धारा पैट्रीडीश विधि से की गयी। इस विधि को करने के लिए मृदा के 10 ग्रा0 नमूने का क्रमिक तनुकरण किया गया। तत्पश्चात् क्रमिक तनुकरण के 1 मिली0 द्रव को प्लेट मे डाला गया। मृदा मे मौजुद जीवाणु, फफूँद तथा एक्टीनोमाइसीटिज़ की गणना को उसके उचित माध्यम मे डालकर की गई। जीवाणु की संख्या के लिए सोइल एक्सट्रैक्ट अगार माध्यम तथा फफूँद के मार्टिन, रोज बंगोल अगार माध्यम तथा केननाइट एवं मोनार अगार माध्यम एक्टीनोमाइसीटिज़ के लिए प्रयुक्त किया गया। तत्पश्चात् पैट्रिडीश को ऊष्मानियंत्रक मे 28° सेल्शियस तापमान पर जीवाणु तथा फफूँद के लिए 72 घण्टे के लिए तथा एक्टीनोमाइसीटिज की संख्या की गणना के लिए 7 दिन के लिए रख दिया गया।

परिणाम

खरपतवारनाशी का मृदा सूक्ष्मजीवों पर प्रभाव जानने के लिए इन मृदा नमूनो का प्रयोगशाला मे निरीक्षण किया गया। खरपतवारनाशी के प्रयोग से पहले भी दोनो स्थानों की मृदा का नमूना एकत्र कर उसमें मृदा की प्रारम्भिक जांच एवं उसमे उपस्थित सूक्ष्मजीवों की संख्या का भी आकलन किया गया। दोनों नमूनों मे नॉ0 ई0 बो0 फसल अनुसंधान केन्द्र, पन्तनगर एवं क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, सागर में क्रमशः के आकलन के अनुसार मृदा मे उपलब्ध नत्रजन की मात्रा अपेक्षाकृत कम एवं फॉस्फोरस तथा पोटाश की मात्रा उचित पाई गई। दोनों स्थानो क्रमशः पन्तनगर एवं

सागर के प्रारम्भिक मृदा नमूनों (Before application, BA) मे जीवाणु, फफूँद एवं एक्टीनोमाईसिटीज़ की संख्या क्रमशः $34.80X10^7$, $42.28X10^7$; $29.91X10^5$, $33.19X10^5$ तथा $24.75X10^4$, $22.57X10^4$ पाई गई।

इन अनुप्रयोगों से उपलब्ध आकड़ों के निरीक्षण के आधार पर मृदा सूक्ष्मजीवों की संख्या पर मैट्रीब्युजीन खरपतवारनाशी का प्रभाव नकारात्मक मिला। ऑकडों के आकलन के आधार पर पाया गया कि खरपतवारनाशी की मात्रा को बढ़ाने पर मृदा में रहने वाले जीवाणु, फफूँद व एक्टीनोमाइसीटीज की संख्या में गिरावट दर्ज हुई, जोकि मृदा में खरपतवारनाशी के प्रयोग से पहले की सूक्ष्मजीवों की संख्या से बहुत कम थी। निरीक्षण के आँकड़ों द्वारा दोनो अनुप्रयोगो के स्थान पर यह पाया गया कि मृदा में सूक्ष्मजीवी की संख्या खरपतवारनाशी के प्रयोग से पहले खरपतवारनाशी के प्रयोग के सात दिन बाद मृदा नमूना से अधिक पायी गयी। दोनो स्थानो पर खरपतवारनाशी की मात्रा को बढ़ते हुये क्रम के साथ मृदा में, जीवाणु फफूँद एवं एक्टीनोमाइसिटीज़ की संख्या में कमी पायी गयी। दोनो अनुप्रयोग के स्थान पर मैट्ररीब्युज़िन 70% धुलनशील चूर्ण की कम मात्रा पर जीवाणु, फफूँद व एक्टीनोमाइसीटीज़ की संख्या कटाई के दौरान (At harvest, AH) कम प्रभावित पाई गई। आकड़ों के आधार पर मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या मे कमी सबसे अधिक खरपतवारनाशी के प्रयोग के सात दिन बाद पायी गयी तथा फसल कटाई के समय लिये गये, मृदा नमूनों मे सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि पायी गयी, परन्तु यह वृद्धि खरपतवारनाशी के प्रयोग से पहले की तुलना मे कम थी। यह वृद्धि यह दर्शाती है कि समय के साथ खरपतवारनाशी का प्रभाव मृदा को भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों के प्रभाव के कारण कम हो जाता है और सूक्ष्मजीवों की संख्या मे वृद्धि होने लगती है। अनुपचारित एवं हाथ द्धारा की गई, निराई गुड़ाई की तुलना में खरपतवारनाशी के सभी उपचार के मामलों मे की गई संख्या की गणना जीवाणु, फफूँद तथा एक्टीनोमाइसीटीज आरम्भिक हानी से, कटाई के दौरान की गयी संख्या की गणना से कम थी। पन्तनगर एवं सागर के मृदा नमूनों जोकि मैट्रीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) 200 ग्रा0/है0 की दर से उपचारित मृदा के नमूनों में जीवाणु, फफूँद एवं एक्टीनोमाइसिटीज़ की संख्या क्रमशः $32.33X10^7$ एवं $39.73X10^7$, $26.33X10^4$ एवं $30.31X10^4$ तथा $17.33X10^5$ एवं $21.23X10^5$ पायी गयी। इन्हीं स्थानो पर 500 ग्रा0/है0 की दर से उपचारित मृदा के नमुनों में जीवाणु, फफूँद एवं एक्टीनोमाइसिटीज़ की संख्या क्रमशः $16.00X10^7$ एवं $14.75X10^7$; $19.00X10^5$ एवं $12.35X10^5$ तथा $14.33X10^4$ एवं $11.81X10^4$ पायी गयी।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मैट्रीब्युजीन 70% के विभिन्न मात्रा के दरें मृदा सूक्ष्मजीवों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। दोनो स्थानो के अनुप्रयोगो पर सबसे अधिक प्रभाव मैट्रीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) 500 ग्रा0/है0 मे दर्ज हुआ। अधिक नकारात्मक प्रभाव क्रमशः जीवाणु, एक्टीनोमाइसीटिज एवं फफूँद की संख्या पर पाया गया। तुलना करने पर मैट्रीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) 200 ग्रा0/है0 की दर से प्रयोग करने पर यह मैट्रीब्युजीन 500 ग्रा0/है0 की उच्च दर से कम गम्भीर पाया गया। मृदा में सूक्ष्मजीवों के गिरावट प्रयोग कियें गये रसायनों के जहरीले प्रभाव के कारण होती है। हालांकि सूक्ष्मजीव खरपतवारनाशी को अपघटित करने मे तथा अपने ही शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए कार्बनिक तत्वों के एक स्त्रोत के रुम में उपयोग करने मे सक्षम है। परन्तु खरपतवारनाशी के जहरीला प्रभाव उसके प्रयोग के तुरन्त बाद सबसे गम्भीर पाया गया तथा समय के साथ फसल की कटाई के समय तक सूक्ष्मजीवों की संख्या मे वृद्धि भी दर्ज हुई। परन्तु यह वृद्धि खरपतवारनाशी के प्रयोग से पहले की गयी सूक्ष्मजीवों की संख्या की गणना से कम दर्ज हुई और तत्पश्चात् सूक्ष्मजीवों की संख्या मे वृद्धि होने लगती है, परन्तु यह वृद्धि जहाँ सबसे अधिक मात्रा मे प्रयोग किये गये खरपतवारनाशी के मृदा नमूनों मे सबसे कम दर्ज हुई। इस अध्ययन से यह दृष्टिगत् होता है कि खरपतवारनाशी की संस्तुत मात्रा मे ही प्रयोग किया जाना उचित है।

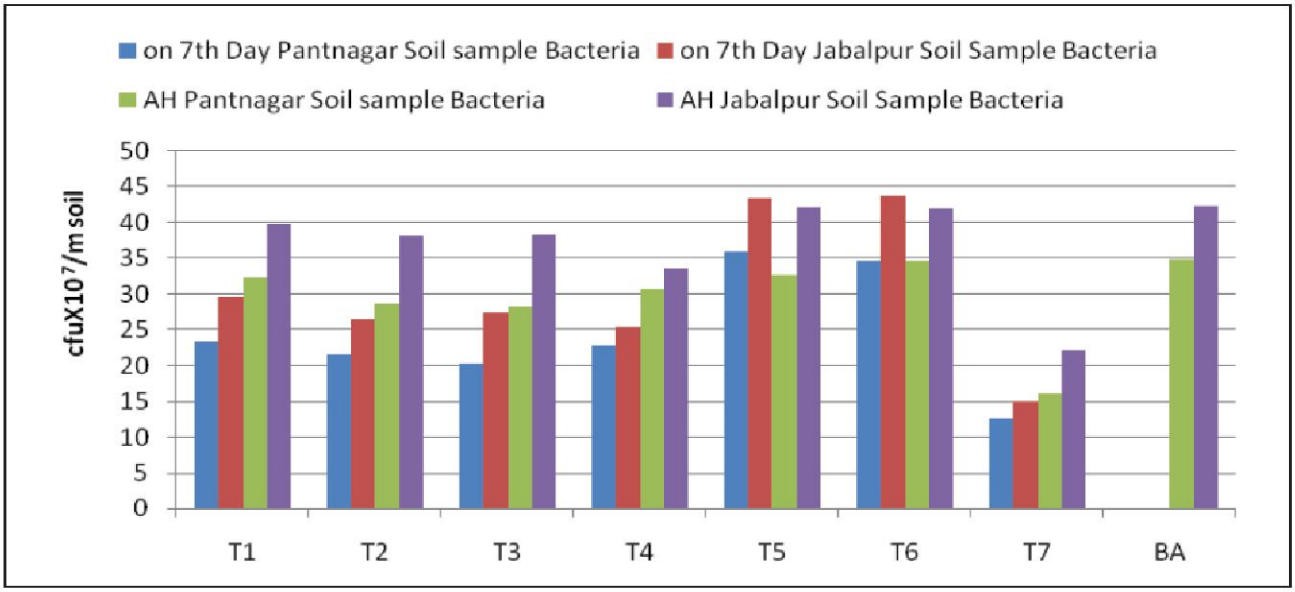

मैट्रीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) की विभिन्न दरों का मृदा के एक्टीनोमाइसीटिज पर प्रभाव

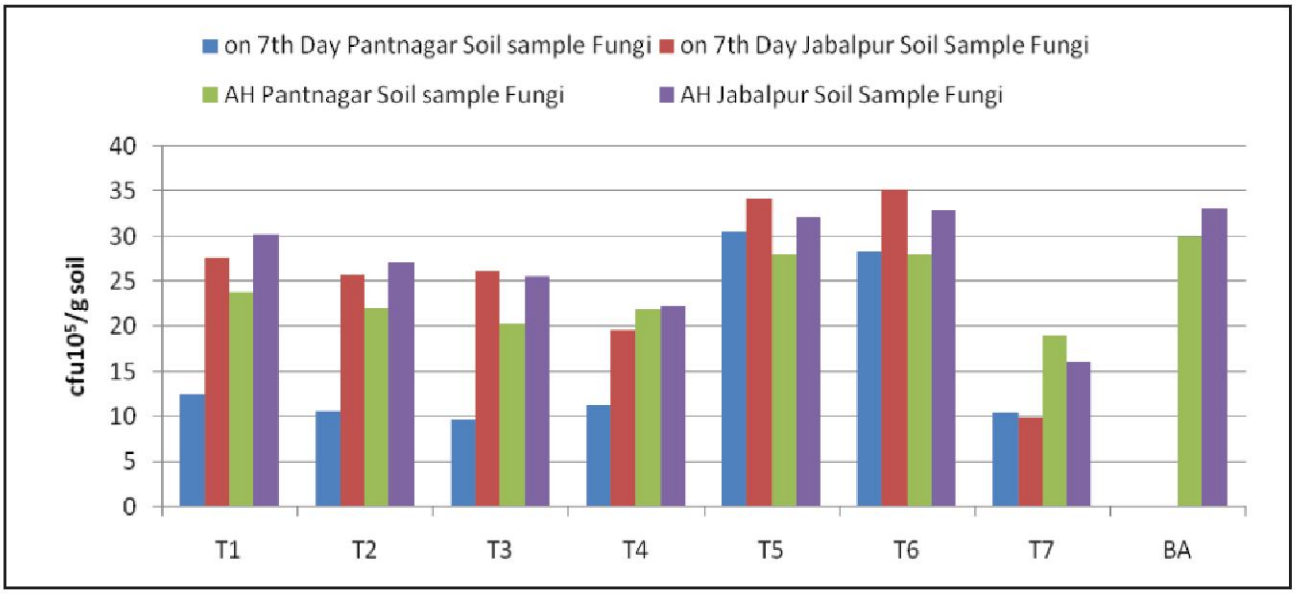

मैट्रीब्युजीन 70% (घुलनशील चूर्ण) की विभिन्न दरों का मृदा के फफूँदों पर प्रभाव

हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और उसे दृढ़ करती है।

- पुरुषोत्तम दास टंडन

जेरीस्केपिंगः सीमित जल ससांधन में भू-सौन्दर्यीकरण

ममता बोहरा, पारूल पुनेठा, एवं बी पी नौटीयाल

जल ही जीवन है। जल के महत्व को इस तरह से समझा जा सकता है कि जल के बिना जीवन की कल्पना करना भी असम्भव हैं। प्रायः यह भी कहा जाता है कि यदि धरती में तीसरा विश्व युद्व होगा तो इसके पीछे मुख्य कारण जल ही होगा। हमारे देश के महानगरीय शहरों जहाँ प्रायः पानी की समस्या होती है वहाँ लोग कृषि सहित फूलों की बागवानी कैसे करें?। इस समस्या का समाधान करने के लिए नित्य नये तरीके से शोध कार्य किये जा रहे हैं। इनमें से एक है जेरीस्केपिंग, अर्थात् बागवानी में सीमित जल के प्रयोग से भू–सौन्दर्यीकरण। यह भू–सौन्दर्यीकरण करने का एक रचनात्मक तरीका है।

जेरीस्केपिंग क्या है?

जेरीस्केपिंग एक ग्रीक शब्द है। जिसका अर्थ जेरिक अर्थात् सूखी तथा स्कैपिंग माने परिदृष्य से संदर्भ रखता है। जेरीस्केपिंग को ऐसे परिभाषित किया जा सकता है कि किसी भू–दृश्य का योजनाबद्ध तथा डिजाइनिंग के द्वारा सीमित पानी के प्रयोग से सौन्दर्यीकरण करना। जेरीस्केपिंग के बारे में लोगों के मन मे तरह–तरह की भ्रान्तिया है जैसे–जेरीस्केपिंग में प्रायः पौधो का प्रयोग नही किया जाता है। अगर करते भी है तो कटीले पौधों (कैकटाई और सकुलेंट) का प्रयोग किया जाता है। ऐसे भू–दृश्यों में लॉन नहीं पाया जाता। किन्तु यह सब मिथ्या है। जेरिस्केपिंग एक रंगीन भू–सौन्दीयकरण परिदृष्य है जो पर्यावरण अनुकूल होने के साथ–साथ बहुत किफायती भी है। इसके साथ–साथ यह हमें प्रदूषण मुक्त वातावरण प्रदान करता है, मृदा के क्षरण को नियन्त्रित करता है तथा अगर यह घरों के आस–पास किया जाए तो उस क्षेत्र के आर्थिक मूल्य को बढ़ाता है। इसके अलावा पक्षियों, तितलियों तथा मधुमक्खियों को आवास भी प्रदान करता है।

जेरीस्केपिंग कैसे करें?

योजना और डिजाइनः– जेरीस्केपिंग करने से पहले कागज में एक स्कैच तैयार किया जाता है। स्कैच बनाते समय कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। सबसे पहले स्कैच मे आवसीय क्षेत्र, गेराज क्षेत्र या निजी क्षेत्र जो भी हो उन्हें चिन्हित करना चाहिए। इसके बाद जितना क्षेत्र बच गया हो जहा पर जेरीस्केपिंग करनी हो उसे पानी की उपलब्धता के आधार पर विभाजित करें। जैसे– कम, मध्यम और उच्च जल आवश्यकता क्षेत्र।

- उच्च जल आवश्यकता वाले क्षेत्र में लगाये गये पौधों को प्राय नियमित पानी की आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों का आकार प्रायः निम्न तथा मध्यम जल क्षेत्रों की तुलना में छोटा होता है।
- मध्यम जल आवश्यकता वाले क्षेत्रों में उन पौधों को लगाया जाता है जिनकों प्रायः स्थापित होने के बाद 8–10 सप्ताह के अन्तराल में पानी की आवश्यकता होती है । इन क्षेत्रों में पौधों को लगाने के साथ लॉन भी तैयार किया जा सकता है।
- कम जल आवश्यकता वाले क्षेत्रों में पेड़, झाड़ियाँ, लतायें आदि को लगाया जाता है। ये पौधे पानी के लिए वर्षा ऋतु पर निर्भर करते हैं।
- पौधों को लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सूरज का प्रकाश उस प्रक्षेत्र में कितना पड़ रहा है। छायादार स्थान पर छाया में लगने वाले पौधों को ही लगाना चाहिए। जबकि खुले स्थान पर उन पौधों को लगाना चाहिए जिन्हें अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है।
- जेरीस्केपिंग करते समय बनाने वाले की दिलचस्पी तथा आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रायः जेरीस्केपिंग करने के लिए स्थानिय पौधों का ही चुनाव करना चाहिए। क्योंकि वे आसानी से उपलब्ध होते है तथा पहले से ही उस पर्यावरण में लगाने के लिए अनूकुल रहते है।

मृदा– पौधों को उगाने के लिए प्रयोग किया जाने वाला माध्यम पौधों के विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माध्यम उचित जल निकास वाला, हवादार तथा आधिक

नमी संग्रहित करने वाला होना चाहिए। मध्यम तथा उच्च जल आवश्यकता वाले क्षेत्रों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट का प्रयोग मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि तथा मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है।

पौधों का चुनाव– जेरीस्केपिंग करने के लिए विभिन्न प्रकार के पौधों का चयन किया जा सकता है। चयन करने के बाद पौधों को जल की आवश्यकता अनुसार श्रेणीबद्ध किया जाता है। पौधारोपण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि एक समूह मे उन्हीं पौधों का चयन करें जिन्हें एक ही प्रकार की मिट्टी, प्रकाश और पानी की आवश्यकता होती है।जेरीस्केप को आकर्षक बनाने के लिए वृक्षों, झाड़ियों, लताओं तथा एकवर्षीय पौधों का प्रयोग किया जा सकता है। जेरिक अनुकूलित पौधों की कुछ विशेषतायें होती है। जैसे– मोटी तथा मांसल तना तथा शाखायें, संकीर्ण और काटेंदार पत्ते, पत्तियों के उपर चमकदार वैक्स की परत तथा ऐसे पौधें जिनकी पत्तियों में घने बाल होते है।

जेरीस्केपिंग करने में प्रयुक्त होने वाले पौधे

वृक्ष

1 जूनिपेरस स्कोपूलोरम (राकी माउनटेन जूनीपर)
2 कोलरूटेरिया पैनीकुलाटा (गोल्डन रेन वृक्ष)
3 पाइनस पोनडोरोसा (पोनडीरोसा चीड़)
4 पाइनस इडूयूलिस (पीनयोन चीड़)
5 पूरूनस अमेरिकाना (खुमानी)
6 क्वेरकस गैम्बली (गैम्बल बाँझ)
7 एसर यटारिक्म (टाटारियन मेंपल)

झाड़िनुमा

1 आर्टिमिशिया कैना (सिल्वर सेजब्रश)
2 आर्टिपैलक्स कैनीसैन्स (साल्टबुश)
3 बरवेरिश थनबरजी (जैपनीश बारबेरी)
4 बुडेलिया अल्टनिफोलिया (अरजेनसिया)
5 विवरनम लैन्टाना
6 काटानईस्टर
7 युमेरोफा कैनीसैन्स (लीड प्लांट)

एकवर्षीय तथा बहुवर्षीय पौधे

1 ग्लैराडिया अरीसटाटा (बलैनकेट फूल)
2 मीराएबलिस मल्टीफलोरा (जांइट 4 ओ क्लाक)
3 धतुरा मैटालोइडस (धतुरा)
4 जीनिया ग्रैन्डीफलोरा (जीनिया)
5 कोरियोपसीस लेन्सीयेलाय
6 गजैनिया स्पैलेन्डेनस
7 ट्रेपीयोलम मैजस (नसटरासेयम)
8 आरटीमिसिया फ्रीजीडा
9 यूफोराबिया
10 अगैव
11 साल्वीया
12 अन्टीराइनम मैजस (डाग फलावर)
13 कोचिया स्कोपारीया

लताये– टरम्पैट वाईन, सीलवर लैस वाइन, इंगलिश आईवी, वारटन आईवी, कलाइमबिग गुलाब।

टर्फ नियोजन– इसको लगाने से मृदा के क्षरण को आसानी से रोकने के साथ प्रक्षेत्र की सुन्दरता को बढ़ाया जा सकता है। टर्फ बनाने में प्रयुक्त होने वाली घास जैसे– बर्मुडा, जोयसिया और बफेलो घास को पानी की आवश्यकता कम होती है। टर्फ को लगभग हफ्ते में एक या दो बार पानी देने की आवश्कता होती है।

सिंचाई– जेरीस्केपिंग में पौधों की सिंचाई तब की जाती है जब उन्हें पानी की आवश्यकता हो। सिंचाई की आवश्यकता स्थापना वर्ष में अधिक होती है। जब पौधे पूरे तरीके से स्थापित हो जाय तो पानी की आवश्यकता घट जाती है। जेरीस्केपिंग को स्थापित करने में लगभग 3 वर्ष लग जाते है। झाड़ीनुमा पौधों को लगभग 25–30 सेमी गहरी तथा एकवर्षीय, बहुवर्षीय छोटे पौधों को लगभग 15–20 सेमी गहरी सिंचाई करनी चाहिए। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में टपक विधि तथा स्प्रीनकलर से सिंचाई उत्तम है। इन विधियों द्वारा 25–50 प्रतिशत पानी की बचत तथा खरपतवार को आसानी

से नियन्त्रित किया जा सकता है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से रसायनिक उर्वरकों को पानी के साथ पौधों को सरलता से दिया जा सकता है।

आच्छादन करना या पलवार बिछाना– आच्छादन विभिन्न चीजों जैसे– गोबर की खाद, पुआल, सूखी घास, प्लास्टिक की पॉलीथिन जो विभिन्न रंगों जैसे–लाल, काली, नीले, सिल्वर रंगों में उपलब्ध होती है से किया जा सकता है। कार्बनिक पदार्थो के प्रयोग द्वारा आच्छादन करने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, क्योंकि ये धीरे–धीरे विघटित होते है तथा मृदा में पोषक तत्वों को डालते है।

प्रबन्धन– प्रबन्धन से तात्पर्य विभिन्न कृषि क्रियाकलापों को निश्चित अंतराल में करने से है। समय–समय पर खरपतवार नियन्त्रण करते रहना चाहिए। खरपतवार पौधे प्रमुख पौधों से प्रकाश, पोषक तत्वों तथा पानी के लिए प्रतिस्पर्धा करने लगते है जिसका सीधा प्रभाव पौधों के विकास पर पड़ता है। प्रारम्भ में खरपतवार को हाथ तथा यांत्रिक रूप से हटाना चाहिए। जब खरपतवार की संख्या अनियन्त्रित हो जाय तो रसायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए। टर्फ घास की कटाई समय–समय पर एक निश्चित अन्तराल में करनी चाहिए। वृक्षों तथा झाड़ियों की छंटाई भी एक उचित समय के अन्तराल पर करनी चाहिए। जेरीस्केपिंग में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कम से कम करना चाहिए क्योकिं उर्वरकों के अधिक प्रयोग से पौधों में अतिरिक्त वृद्धि होती है, जिसके कारण से पौधो द्वारा पानी की खपत अधिक होती है। वह पौधें जो कीट तथा बीमारियों से प्रभावित हो उन्हें जल्दी हटा देना चाहिए। ताकि वे अन्य पौधों में बीमारियां ना फैला सकें।

हिंदी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है, जिसे बिना भेद-भाव प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।

- पं.मदन मोहन मालवीय

उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में जल दुर्दशा : कारण एवं समाधान

के आर जोशी, इन्दु रावत एवं बाँके बिहारी

जल प्रकृति की अनमोल धरोहर है। जल वनस्पति एवं प्राणियों के जीवन का आधार है। उसी से हम मनुष्यों, पशुओं एवं वृक्षों को जीवन मिलता है। हमारे एवं पशुधन के लिए पीने के लिये शुद्ध जल आवश्यक है, क्योंकि स्वच्छ एवं सुरक्षित जल अच्छे स्वास्थ्य की कुंजी है। धरती के दो तिहाई हिस्से पर पानी भरा हुआ है फिर भी पीने योग्य शुद्ध जल पृथ्वी पर उपलब्ध जल का मात्र एक प्रतिशत हिस्सा ही है। 97 प्रतिशत जल महासागर में खारे पानी के रूप में भरा हुआ है। शेष रहा दो प्रतिशत जल बर्फ के रूप में जमा है। अतः यह आवश्यक है कि हम जल का महत्व समझें। यदि जल व्यर्थ बहेगा व उसका दुरूप्रयोग होगा, वह प्रदूषित होगा तो आगे आने वाले समय में स्वच्छ जल की उपलब्धता एक महा संकट बन जाएगा।

दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता है जो भारत की गंगा नदी के आसपास विकसित हुई। स्वतंत्रता के बाद बडे बांधों के माध्यम से पानी के बहाव एवं मात्रा को नियंत्रित करके और जल का भंडारण करके, जल से विद्युत उत्पादन को, सिंचाई में उपयोग को उचित महत्व दिया गया। हालांकि हमारे शहर और कस्बे पानी की जरूरत बनाम पानी की उपलब्धता की योजना बनाए बिना बडे होते चले गए। 1951 में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 5177 मी^{3} थी। जो पिछले दशक में 2011 में घटकर लगभग 1545 मी^{3} तक रह गई है (स्रोतः जल संसाधन प्रभाग, टिहरी)।

बढ़ता जल संकट

आज लोगों को एक–एक घडे शुद्धपेयजल के लिये मीलों भटकना पड रहा है। जल के टैंकर और ट्रेन से जल प्राप्त करने के लिये घंटों कतार में खड़ा रहना पड़ता है। रोजमर्रा के कामकाज नहाने, कपड़े धोने, खाना बनाने, बर्तन साफ करने, उद्योग धंधा चलाने के लिये तो जल चाहिए, जबकि नदी, तालाब, ट्यूबवैल, हैण्डपम्प एवं कुएँ बावड़ियाँ सूख गए हैं। पशु–पक्षियों को भी पानी के लिये मीलों भटकना पड़ता है। पेड़–पौधे भी सूखते जा रहे हैं। जल की कमी से अनेक कारखाने बंद होने से लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं। खेती–बाड़ी के लिये तो और भी अधिक पानी की जरूरत है परन्तु पानी नहीं मिलने से खेती–बाड़ी चौपट होती जा रही है। जल संकट हमारे पूरे दैनिक जीवन को बुरी तरह से प्रभावित करता है। इसलिये इस मसले पर प्राथमिकता से ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

जल की कमी के कारण और समाधान

जल की कमी की मुख्यतः जनसंख्या वृद्धि और जल संसाधनों के कुप्रबन्धन या प्रबंधन न होने के के कारण हुई है। पानी की कमी के कुछ अन्य कारण भी हैं:

- दुनिया में कृषि उत्पादन में भारत शीर्ष उत्पादकों में से एक है, इसलिए सिंचाई के लिए पानी की खपत सबसे अधिक होती है। सिंचाई की परंपरागत तकनीक का प्रयोग, वाष्पीकरण, जल निकाय, रिसना, और भूजल के अत्यादिक दोहन के कारण बड़ी मात्रा में पानी व्यर्थ जाता है। इस कारण अन्य उद्देश्यों के लिए पानी की कमी बनी रहती है। इसका व्यापक समाधान सूक्ष्म सिंचाई तकनीक जैसे ड्रिप और फव्वारा सिंचाई का उपयोग करके किया जा सकता है।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल मण्डल में चुने गये गाँवों में पानी के उपलब्ध स्रोतों के प्रकार, उनका स्वामित्व एवं उपयोग

गाँव	जल स्रोत (धारा)	अवस्था (कार्यशीलता)	स्वामित्व	उपयोग
1	7	3	ग्राम पंचायत	पीने एवं घरेलू उपयोग हेतु
2	4	1		
3	10	3		
4	4	2		

स्रोतः भाकृअनुप– भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून

- घर की छत पर गिरने वाले बरसात के पानी का संग्रहण कर भूजल रिचार्जिंग तंत्र के रूप में भी काम में लाया जा सकता है। उनकी अनदेखी हो रही है। एक नए निर्माण को कार्यान्वित करने के दौरान हमें पारंपरिक जलवाही स्तर को पुनर्जीवित करने हेतु उचित प्रणाली भी विकसित करनी चाहिए।
- पानी की कमी का एक कारण पारंपरिक जल निकायों में सीवेज और अपशिष्ट जल निकासी भी है जिसको उपचारित करके उपयोग लायक बनाने की आवश्यकता है।
- भारत में पानी की कमी का कारण नदियों और तालाबों में रसायनों और अपशिष्ट पदार्थों द्वारा दूषित होना भी है। इसको कम करने के लिए सरकार, एनजीओ और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा सख्त निगरानी और कानून के कार्यान्वयन की आवश्यकता है।
- बरसात के मौसम में बडे जल निकायों में समय–समय सफाई करवा कर (गाद निकालकर) जल भंडारण क्षमता को स्थिर रखा जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि राज्य स्तर पर सरकार ने इसे वार्षिक कार्य के रूप में प्राथमिकता से नहीं लिया है, जबकि इससे जल भंडारण वं भूजल स्तरों में महत्वपूर्ण बढ़ावा कर सकता है।
- शहरी उपभोक्ताओं, कृषि क्षेत्र और उद्योगों के बीच पानी के कुशल प्रबंधन और वितरण का अभाव है। सरकार को प्रौद्योगिकी में अपने निवेश को बढ़ाने की आवश्यकता है और उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग सुनिश्चित करने के लिए योजनाबद्ध रूप में हर स्तर के हितधारकों को शमिल करना होगा।
- शहरों में होने वाले विकास और भवन निर्माणों के कारण भूजल संसाधनों, भूजल पुनर्भरण के मार्ग को अवरूद्ध कर दिया गया है जिसके कारण यह समस्या और बढ़ गई है। हमारे शहरी समाज में बरसात के पानी को न तो प्राकृतिक तत्वों को बनाए रखते हुए इसका उपयोग करने के अनुकूल तरीके से रिचार्ज किया जाता है और न ही उसमें संग्रहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त गंभीर रूप से निकायों में औद्योगिक कचरे और गंदगी का प्रवेश पीने योग्य पानी की उपलब्धता को कम कर रहा है। इन क्षेत्रों में अधिकतर जलीय प्राणी पहले ही लुप्त हो गए हैं। यह बहुत गंभीर उभरता हुआ संकट है। यदि हम इस समस्या को गंभीर रूप से नहीं लेंगे तो हम कभी भी इस जटिल समस्या का स्थायी समाधान नहीं कर पायेंगे।

पानी की कमी की समस्याओं पर नियंत्रण हेतु समाधान

- यदि भारत में पानी वाले शौचालय का उपयोग किया जाये तो प्रति वर्ष प्रति घर से लगभग 20,000 लीटर से ज्यादा पानी बच सकता है। पारंपरिक फ्लश से प्रति फ्लश छह लीटर पानी खर्च करता है। यदि घर के

बच्चों सहित सभी पुरूष सदस्य नई तकनीक के फ्लश का उपयोग कर तो पानी की बढ़ती मांग पर सामूहिक प्रभाव काफी कम हो जाएगा।

- घर पर बर्तन धोने एवं ब्रश करने के दौरान बर्बाद होने वाले पानी की मात्रा भी महत्वपूर्ण है। हमें अपने बर्तन धोने के तरीकों को बदलने और जल बहाने की आदत को कम करना चाहिए। यहाँ पर एक छोटा कदम पानी की खपत में महत्वपूर्ण बचत कर सकता है।
- प्रत्येक घर और आवास कॉलोनी में वर्षा जल संचयन करने की सुविधा होनी चाहिए। यदि वर्षा जल संचयन करने की सुविधा को कुशलता से डिजाइन और ठीक से प्रबंधित किया जाये तो यह अकेले की पानी की मांग को काफी कम करने में सक्षम है।
- गंदे पानी का शुद्धीकरण करके इस पानी का अन्य कामों में उपयोग किया जा सकता है। गंदे पानी का शुद्धीकरण करने के लिए कई कम लागत वाली तकनीकें उपलब्ध हैं, जो समूह आवास क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा सकती हैं।
- प्रायः घरों में, सार्वजनिक क्षेत्रों और कॉलोनियों में नलों पाइपों से पानी का रिसाव होता रहता है। लगातार पानी रिसाव से प्रति वर्ष करीब 2,26,800 लीटर पानी व्यर्थ जाता है।
- जब तक हम जल अपव्यय को रोकने के लिए बृहद स्तर पर कदम नहीं उठायेंगे और इस संबंध में जागरूकता नहीं फैलायेंगे तब तक हम जल की मूलभूत मात्रा से वंचित रहेंगे।

जल संकट के लिये जिम्मेदार कौन?

जल संकट तो हमारी भूलों और लापरवाहियों से ही उपजा है। हम अनावश्यक रूप से तथा अधिक मात्रा में जल का दोहन कर रहे हैं। दैनिक उपयोग में आवश्यकता से अधिक मात्रा में जल का अपव्यय करने की आदत ने जल संकट बढ़ा दिया है। बढ़ती जनसंख्या के कारण भी जल का उपभोग बढ़ता जा रहा है। खेती एवं उद्योगों में अधिक उत्पादन लेने के चलते जल का उपभोग बढ़ गया। जल का स्रोतों से उपभोक्ता तक पहुँचने से पहले की पाँचवा हिस्सा गटर में चला जाता है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई व वनों के लगातार घटने से वर्षा अवधि व वर्षा की मात्राा में भी कमी आ रही है। कुओं, नलकूपों, तालाबों से अन्धाधुन्ध जल दोहन के कारण भूजल में कमी आ गई है। धरती में जल स्तर निरन्तर नीचे जा रहा है। कल–कारखानों से निकला दूषित जल व शहरी क्षेत्रों के गटर एवं कूड़े–कचरे ने जलस्रोतों को प्रदूषित कर दिया है, जिससे पीने के पानी का संकट खड़ा हो गया है। यह सब कुछ अनियन्त्रित मानवीय गतिविधियों के कारण ही हुआ है। इसका निराकरण भी मानव ही कर सकता है।

जन भागीदारी से जल संरक्षण

अपने पुरखों से हमें अनेक प्रकार के जलस्रोत विरासत में मिले हैं। हमारे देश के गाँव–गाँव में परम्परागत कुएँ व तालाब बने हुए हैं। पिछले वर्षों में लम्बे समय से हम इनको अनदेखा करते आ रहे हैं। इन्हें या तो तोड़–फोड़ दिया गया है या रख–रखाव के अभाव में वे प्राकृतिक रूप से नष्ट हो गए हैं। हमने अपने ही स्वार्थ में इन्हे उजाड़कर

कंकरीट का जंगल बिछा दिया है। गाँव–गाँव और शहर–शहर में बने हुए जलस्रोतों को पुनरूद्धार किया जाना आवश्यक है। मोहल्ले, गाँव, शहर जहाँ भी ऐसे स्रोत हैं वहाँ के लोग मिलकर इन जलस्रोतों की सामूहिक रूप से जिम्मेदारी लें। इनमें जमा कूडे–कचरे, मिट्टी, कंकड आदि को हटाएँ। प्राकृतिक रूप से भूजल पुर्नभरण को सुनिश्चित करें। जलस्रोतों के मार्ग में आने वाले अवरोध व नाजायज कब्जे हटाएँ। जलस्रोतों के रखरखाव में अपनी व दूसरे लोगों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है।

स्थानीय निकायों का दायित्व

गाँवों में पंचायते, शहरों में नगरपालिका/महानगर निगम बने हुए हैं। इनका दायित्व सभी लोगों को जल शुद्ध पर्याप्त मात्रा में मिले इसका प्रबन्ध करना है। इस मद में सभी सरकारी विभाग एवं स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ फलस्वरूप जनता से कर के वसूले गए पैसे के करोड़ों रूपयों का खर्चा प्रतिवर्ष करती हैं। जनता को उसका परिणाम देखने, परखने का हक है। ये संस्थाएं जनता की भागीदारी से जल भण्डारण के लिये उपयुक्त व्यवस्था जैसे– कुएँ, तालाब, बाँध का निर्माण कराएं एवं उनके रख–रखाव का ध्यान रखे। नदियों में गंदे नालों का पानी न जाने दें, उन्हें शुद्ध रखने के सभी उपचार करें। उन्हें गंदा होने से बचाएं, व्यर्थ में जल की बरबादी एवं अपव्यय करने के कारकों को दूर करें। पेड लगाने और उनकी सुरक्षा करने से हरियाली बढ़ने के साथ–साथ भूमि में पानी को रोकने मे मदद मिलेगी। जल प्रकृति की देन है, हमें इसका संग्रहण, संरक्षण करते हुए न्यायोचित/बुद्धिमता पूर्वक उपयोग करना है। इस पर हर व्यक्ति का समान का अधिकार है।

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है।

– सुमित्रानंदन पंत

आँसू जैसी खरी कमाई

कमलेश कुमार

जितना द्रव्य दिया दाता ने उसका सद उपयोग किया है।
एक–एक ग्यारह करने का हर सम्भव उद्योग किया है।।

मंगल बेला में उठ करके मात–पिता गुरू शीष झुकाया
पाठन–पठन रोजमर्रा का लेखा–जोखा आया–जाया
दिनभर दौड़ा सर्दी–गर्मी वर्षा में सूखा न ही बैठा
डरकर खड़ा न रहा किनारे बढ़ कर पानी गहरे पैठा

मुझे मिला जो संस्कार में जीवन मैंने वही जिया है।
जितना द्रव्य दिया दाता ने उसका सद उपयोग किया है।।

सोच समझकर सदा खर्च की आँसू जैसी खरी कमाई
प्रतिफल की लालसा न कोई पूरी की कर्तव्य निभाई
जब चाहे हिसाब ले लेना रूपया–रूपया पैसा–पैसा
डायरी में वह चमक रहा है अन्धकार में लट्टू जैसा

एक हाथ में लिया किसी से तुरन्त दूसरे हाथ दिया है।
जितना द्रव्य दिया दाता ने उसका सद उपयोग किया है।।

अंग लगे अब उत्तर देने इनकी कुछ परवाह न मुझको
मन मंजिल बढ़ने को तत्पर दूध फूल की चाह न मुझको
मैं तो बढ़ता ही जाऊँगा जब तक चलता रथ सांसो का
ज्योति पुँज का आराधक हूँ पालक पावन विश्वासों का

अन्तिम जय प्रयास की होती घुट्टी में तो यही पिया है।
जितना द्रव्य दिया दाता ने उसका सद उपयोग किया है।।

चलते–चलते जब ठहरेंगे साँसो के इस रथ के चक्के
बचत पत्र होगें फाइलों में काव्य संकलन इक्के–दुक्के
हस्त लिखित कुछ ग्रन्थ मिलेंगे अपरिपक्व आवर्ती खाते
चित–परिचित समवेत कहेंगे क्रियाशील था जाते–जाते

कल्मष नहीं लगाया बिल्कुल ज्यों की त्यों चादरत किया है।
जितना द्रव्य दिया दाता ने उसका सद उपयोग किया है।।

भूमि क्षमता वर्गीकरण का महत्व एवं तरीके

राजीव रंजन, गोपाल कुमार एवं गंभीर सिंह

भूमि क्षमता वर्गीकरण भूमि का एक व्यवस्थित वर्गीकरण है जो कृषि की क्षमता का निर्धारण, खेती की जाने वाली फसलों और स्थायी आधार पर चारागाह पौधों का रोपण कर उपयोग करने के लिए करते है। यह वर्गीकरण मुख्य रूप से कृषि प्रयोजन के लिए बनाया गया है। यह वर्गीकरण भूमि की क्षमता के अनुसार भूमि का उपयोग करने और किसान की आवश्यकता के अनुसार भूमि का उपचार करने के उद्देश्य से बना है। भूमि क्षमता वर्गीकरण की अवधारणा संयुक्त राज्य अमेरिका में मिट्टी संरक्षण की योजना के तहत विकसित की गई है। यह अवधारणा भारत में समान उद्देश्यों के लिए अखिल भारतीय मृदा और भूमि उपयोग सर्वेक्षण संगठन द्वारा अपनाई गई है।

इसके अतिरिक्त, भारत में सन् 1988 में एक राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति बनाई गयी थी। इसके द्वारा भूमि उपयोग में अवांछित परिवर्तन को अवैध करार दिया गया। भारत में भूमि उपयोग नीति के मुख्य लक्ष्यः भूमि उपयोग का विस्तृत और वैज्ञानिक सर्वेक्षण कराना, वन नीति के अनुरूप 33.3% भूमि पर वनावरण स्थापित करना, गैर कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी को रोकना, बंजर भूमि का विकास कर इसे कृषि लायक बनाना, स्थायी चारागाहों का विकास करना और सस्य गहनता में वृद्धि करना है।

भूमि क्षमता वर्गीकरण का उद्देश्यः

- भूमि उपयोग का मानचित्र तैयार करना, जिस से उपयोग के लिए निहित तकनीकी आँकड़ें सरल और व्यवहारिक रूप में उपलब्ध होते हैं।
- यह मिट्टी और पानी के क्षरण के खतरों और भूमि का उपयोग करने में आने वाली कठिनाईयों को इंगित करता है।
- यह किसी भूमि की सबसे गहन लाभदायक और सुरक्षित उपयोग करने की क्षमता को इंगित करता है।
- यह कृषि में भूमि अनुसंधान कर सबसे अच्छा भू–उपयोग क्या है, क्योंकि यह भूमि के वैज्ञानिक और तकनीकी दृष्टिकोण से लिए गए आँकड़ों की व्याख्या/विश्लेषण पर आधारित है।

भूमि क्षमता वर्गों को आमतौर पर दो प्रमुख समूहों में विभाजित किया जाता है:

(i) खेती के लिए उपयुक्त भूमि तथा
(ii) खेती के लिए अयोग्य लेकिन स्थायी वनस्पति जैसे चारागाह, बाग और जंगलों आदि के लिए उपयुक्त भूमि

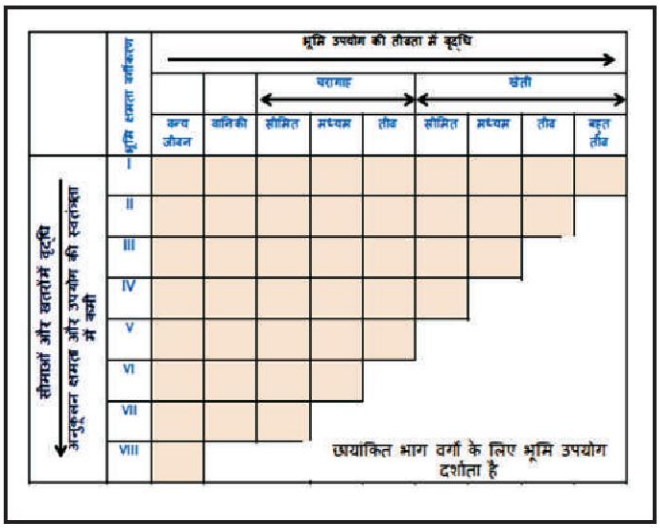

विभिन्न भूमि उपयोगों के लिये भूमि क्षमता वर्गों की उपयुक्तता

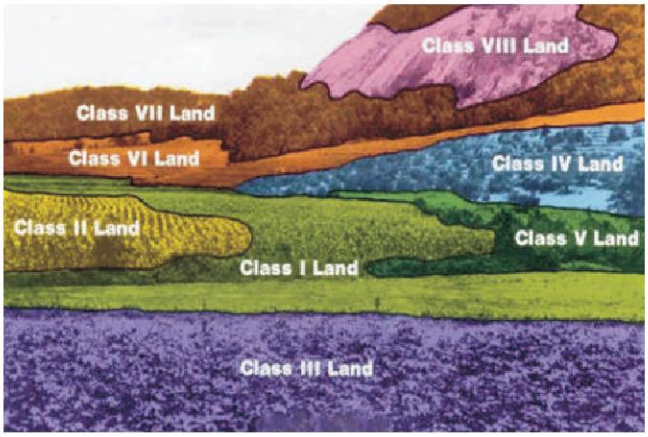

प्रत्येक वर्ग में भूमि और मिट्टी की विशेषताओं और सुरक्षित उपयोग का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है:

भूमि क्षमता वर्ग I

इस वर्ग की भूमि बहुत अच्छी होती है। मिट्टी गहरी, उपजाऊ, अच्छी जल धारण क्षमता वाली और सरलता से काम करने लायक और लगभग समतल होती है। इस वर्ग की मिट्टी में कुछ सीमाए होती है जो उनके उपयोग को प्रतिबंधित करती है। इस वर्ग की भूमि पर बहुत गहनता से खेती की जा सकती है तथा चारागाहों के लिए, यहाँ तक कि वन्यजीवों के संरक्षण के लिए भी उपयोग किया जाता है।

ये मिट्टी या तो प्राकृतिक रूप से उपजाऊ होती है या इनमें ऐसी विशेषताएँ होती है जो फसलों में उर्वरक उपयोग के अच्छे परिणाम देती है। इस प्रकार की मिट्टी की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए केवल सामान्य फसल प्रबंधन विधियों की आवश्यकता होती है।

भूमि क्षमता वर्ग II

इस वर्ग की भूमि उत्कृष्ट होती है, लेकिन कुछ सीमाएँ है, जो कुछ हद तक फसलों के चयन तथा भूमि की उपयोगिता को सीमित करती है। इस वर्ग के लिए मध्यम संरक्षण उपायों की आवश्यकता होती है। इस मिट्टी का उपयोग भूमि क्षमता वर्ग I के समान फसलों के लिए किया जा सकता है और अधिकांश फसलों को उगाया जा सकता है, लेकिन बिना उचित प्रबंधन के ऐसे करना हानी के मध्यम स्तर के अंतर्गत आते है।

क्षमता वर्ग II में भूमि का उपयोग एक या अधिक कारकों द्वारा सीमित हो सकता है जैसेः

(1) ढलान, (2) मध्यम क्षरण के खतरे, (3) अपर्याप्त मिट्टी की गहराई, (4) आदर्श मृदा संरचना और कार्य क्षमता में कमी, (5) मामूली क्षारीय स्थिति, तथा (6) कुछ हद तक प्रतिबंधित जल निकासी। इस वर्ग की भूमि के लिए आवश्यक प्रबंधन उपायों में सीढ़ीदार, पट्टीदार खेती, समोच्च जुताई तथा फसल चक्रण आदि शामिल हैं। कक्षा I की भूमि में नियोजित प्रबंधन उपाय सामान्यतः कक्षा II की मिट्टी के लिए भी आवश्यक हैं। भूमि क्षमता चक्रण आदि शामिल हैं। कक्षा I की भूमि में नियोजित प्रबंधन उपाय सामान्यतः कक्षा II की मिट्टी के लिए भी आवश्यक हैं।

भूमि क्षमता वर्ग III

इस क्षमता वर्ग की भूमि की मिट्टी सामान्य होती है और उन्हें फसलों के लिए नियमित रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है– किन्तु इस मिट्टी में खड़ी ढलान होती है और कुछ पारिस्थितिकीय समस्या (मिट्टी के कटाव) या जलवायु समस्या (वर्षा अनियमितता) होने के कारण इसके उपयोग सीमित होते है।

क्षमता वर्ग में भूमि का उपयोग विभिन्न कारकों के कारण से हो सकती है जैसेः (1) मध्यम खड़ी ढलान, (2) उच्च क्षरण खतरा, (3) बहुत धीमी गति से पानी की पारगम्यता, (4) मध्यम गहराई और प्रतिबंधित जड़ क्षेत्र, (5) कम पानी धारण क्षमता, (6) कम उर्वरकता, और (7) मध्यम क्षार या लवणता। तृतीय श्रेणी में मिट्टी को अक्सर विशेष संरक्षण उपायों की आवश्यकता होती है। इस मिट्टी में ऐसी फसल प्रणाली की आवश्यकता होती है जो मिट्टी कटाव को कम करती हो। मिट्टी को क्षरण से बचाने के लिए आच्छादन की आवश्यकता होती है तथा यह मिट्टी की संरचना की रक्षा में भी मदद करता है। इसके अतिरिक्त, सतह जल निकासी और समोच्च जुताई जैसे उपायों को सुनिश्चित किया जाना आवश्यक होता है।

भूमि क्षमता वर्ग IV

इस वर्ग की भूमि का उपयोग खेती के लिए किया जा सकता है, लेकिन फसलों के चयन पर बहुत सीमाएँ हैं। इस वर्ग की भूमि गंभीर स्थायी खतरों से प्रभावित होती है, जैसे जल जमाव और पानी की कमी। वे अक्सर खड़ी ढलानों पर होती है जिससे भू–क्षरण का खतरा अधिक होता है। मिट्टी बहुत कम उपजाऊ होती है और इस मिट्टी में मुख्य रूप से मोटे अनाज उगाए जाते है। इस वर्ग की भूमि को चरागाह के रूप में प्रयोग करना बेहतर होता है। पाँच या छह साल में एक बार अनाज की फसलें उगाई जा सकती है। मृदा और नमी संरक्षण उपायों को अपनाया जाना अनिवार्य होता है।

भूमि क्षमता वर्ग V

ये भूमि तलहटी या पर्वत घाटियों की होती है और घास व झाड़ियों आदि के लिए उपयुक्त है। इस मिट्टी का उपयोग चरागाह या वानिकी के लिए किया जाना चाहिए। गीली और पत्थरदार होने के कारण इस मिट्टी में खेती संभव नही है। जमीन लगभग समतल होती है और ठीक से प्रबंधित होने पर, हवा या पानी से क्षरण की संभावना कम हो जाती है। क्षमता वर्ग V में मिट्टी क्षरण के खतरों के अलावा अन्य कारकों द्वारा भी उनके उपयोग में कुछ सीमाएँ है जैसे :

(1) लगातार अतिप्रवाह का खतरा, (2) फसल वृद्धि समय कम (3) पथरीली मिट्टी तथा (4) जल भराव क्षेत्र जहाँ जल निकासी संभव न हो आदि।

खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी और जल संरक्षण कृषि अभ्यास का चयन

	वर्ग I	वर्ग II	वर्ग III	वर्ग IV
अच्छी खेती				
उर्वरक का उपयोग	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
रासायनिक खाद डालना	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
चूना डालना (यदि आवश्यक हो)	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
जमीन ढकने वाली फसल	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
हरी खाद	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
फसल का चक्रीकरण	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
फसल अवशेष का मिलान	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ
भूमि–जल संरक्षण अभ्यास				
ढलान के विपरीत खेती	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
ढलान के विपरीत पट्टीदार फसल	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
खूंटी पतवार से ढँकना	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
ढलान के विपरीत टैरेस	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
वर्गीकृत छत	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
तीव्र ढाल की भूमि– मिट्टी एवं जल संरक्षण अभ्यास				
सीढ़ीनुमा खेती	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ
जलनिकास	नहीं	हाँ	हाँ	हाँ
क्षारीय मिट्टी का सुधार	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ
ले खेती	नहीं	नहीं	नहीं	हाँ

भूमि क्षमता वर्ग VI:

इस भूमि में मध्यम स्थायी सीमाएँ होती हैं और खेती के लिए अनुपयुक्त होती है। इस मिट्टी का उपयोग चारागाह और वानिकी के लिए किया जाना चाहिए। वे क्षमता वर्ग V की तुलना में मिट्टी की गहराई कम तथा ढाल ज्यादा होती है और मृदा अपक्षरण की संभावना ज्यादा होती है। अधिक कटाव वाले अथवा बीहड़ जमीन भी इसी वर्ग में आते है।

भूमि क्षमता वर्ग VII:

कक्षा VI भूमि की तुलना में, इस मिट्टी में पर्यावरणीय बाधाओं की गंभीरता बहुत अधिक होती है। नतीजतन, ये मिट्टी गंभीर स्थायी खतरों से प्रभावित होती है। ये चारागाह या वानिकी के लिए भी ज्यादा उचित नही होते। ये मिट्टी खड़ी, क्षीण उथली या दलदली होती है और खेती के लिए पूरी तरह से अनुपयुक्त है। इस भूमि पर मृदा एवं जल संरक्षण प्रबंधन अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए।

भूमि क्षमता वर्ग VIII

इस प्रकार की भूमि पर पौधे/वनस्पति जीवित रहने की प्रत्यक्ष संभावना नहीं होती है। इस भूमि का उपयोग कुछ दुर्लभ प्रजातियों को संरक्षित करने या जलीय क्षेत्र के रूप में किया जा सकता है। इस वर्ग की मिट्टी बेहद शुष्क, दलदली, रेत के टीले और बंजर पर्वत की चोटी आदि होती

वर्ग पांच, छह और सात भूमि के लिए चारागाह और वन प्रबंधन अभ्यास का चयन

प्रबन्धन	वर्ग V	वर्ग VI	वर्ग VII
चरागाह प्रबंधन			
बुवाई	हाँ	हाँ	हाँ
उर्वरक उपयोग	हाँ	हाँ	सीमित परिणाम
चूना उपयोग (जब आवश्यक हो)	हाँ	हाँ	सीमित परिणाम
पानी को नियंत्रित करना	नहीं	हाँ	सीमित परिणाम
घूर्णन चराई	नहीं	हाँ	सीमित परिणाम
स्थगित चराई	नहीं	हाँ	कठिन
बाड़ लगाना	नहीं	हाँ	सीमित चराई
पानी के स्थानों की जगह	नहीं	हाँ	सीमित चराई
वन प्रबंधन			
वृक्षारोपण	हाँ	हाँ	हाँ
वनीकरण	हाँ	हाँ	हाँ
आग की रोकथाम	हाँ	हाँ	हाँ
अधिक शोषण से बचाव	हाँ	हाँ	हाँ

है। ये खेती, वानिकी या चरागाह के लिए उपयुक्त नहीं है, इनका उपयोग केवल मनोरंजन, वन्य जीवन, जल आपूर्ति या सौंदर्य प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है।

भूमि क्षमता उप–वर्ग

सीमाओं के आधार पर क्षमता वर्गों को चार उपवर्गों में बाँटा गया है (i) कटाव का खतरा (e), (ii) गीलापन, जल निकासी (w), (iii) जड़ क्षेत्र की सीमाएँ (s), और (iv) जलवायु सीमाएँ (c) । उप–वर्गो को क्षमता वर्ग संख्या में सीमा प्रतीक जोड़कर लिखा जाता है, उदाहरण के लिए IIe, IIIs आदि, कक्षा। में कोई उप–वर्ग नहीं होता है।

भूमि उपयोग योजना में भूमि क्षमता वर्गीकरण का महत्वः

भूमि क्षमता वर्गीकरण भूमि उपयोग योजना बनाने में सहायता करता हैः

- भूमि क्षमता वर्गीकरण भूमि के किसी भी हिस्से के लिए उपयोग की सीमा निर्धारित करता है और संरक्षण समस्याओं और संभावित उपचार को परिभाषित करने में मदद करता है। इसे ध्यान में रखते हुए, भूमि का सबसे कुशल भूमि उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर सभी कृषि गतिविधियों को वर्ग I से IV तक और अन्य गतिविधियों जैसे कि चरागाहो, इमारतों, सड़कों इत्यादि को वर्ग V से VIII तक उपयोग किया जाना चाहिए। इस योजना के अंर्तगत विशेष भूमि के लिए सबसे उपयुक्त फसल का चयन किया जाना चाहिए।
- यदि मौजूदा सीमाओं को स्थायी रूप से नियंत्रित (जैसे कि सिंचाई प्रदान करना, उचित जल निकासी प्रदान करना, बाढ़ नियंत्रण उपायों का निर्माण करना) कर दिया गया हो तो भूमि की क्षमता वर्ग को बेहतर वर्गों की ओर बदल सकते है।

भूमि क्षमता वर्ग एवं उपवर्ग निर्धारण हेतु भूमि के कुछ गुणों एवं लक्षणों को आँकलित कर किया जाता है। भूमि की क्षमता निर्धारित करने वाले कई कारक हैं जिनमें से जमीन की ढाल, भूमि कटाव की स्थिति, कटाव के खतरे, मिट्टी की गठन, मिट्टी की गहराई, मिट्टीमें अम्लता एवं क्षारयिपन, मिट्टी में जल की पारगम्यता, भूमि में जल जमाव की संभावना, मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता, जलवायु अनुकूलता (तापमान, वर्षा, हवा की गति, वाष्पीकरण) आदि प्रमुख है। इनमें से चार अनिवार्य कारक इस प्रकार है मिट्टी की रचना (टेक्सचर), मिट्टी की गहराई, भूमि की ढाल एवं मिट्टी कटाव या पूर्व में हुए कटाव के प्रमाण। इन कारकों की संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

ISO 9001:2015

भूमि क्षमता वर्ग निर्धारण के लिए आवश्यक कारक एवं उनका विशलेषण

कक्षा	गठन	मिट्टी की गहराई (सें.मी)	जलोढ़ मिट्टी	मिट्टी काली	लाल मिट्टी	गहरी लाल मिट्टी	हिमालय	पिछले कटाव का प्रभाव	क्षरण के लिए संवेदनशीलता – सक्रिय गली अग्रभाग से दूरी	पारगम्यता मिमी/घंटा	चलकता dSm^{-1}	जलवायु
I	Sicl, cl, l, sl, sil, scl	> 90 (d5)	0-1(A)	0-1(A)	0-1(A)	0-1(A)	0-1(A)	ऊपर मिट्टी का 1/4 भाग खो दिया है चादरनुमा अपरदन (e1)	बहुत दूर	मध्यम 20–50	0–2	आर्द्र जलवायु पूरे साल भर अच्छी तरह से वितरित वर्षा
II	Sicl, cl, sl, sil, , scl	45-90	1-3(B)	1-3(B)	1-3(B) 3-5(C)	1-3(B) 3-5(C)	1-3(B)	ऊपर मिट्टी का 1/4 भाग खो दिया है चादरनुमा अपरदन (e1)	न्यूनतम 60 मी.	मंद 5–20 या मध्यम तीव्र 50–125	2–4	कभी–कभी शुष्क अंतराल के साथ आर्द्र जलवायु, फसल की उपज अक्सर सूखे से कम हो जाती है
III	Sc, sic, c, ls	22.5-45	3-5(C) 5-10(D)	3-5(C)	5-10(D)	5-10(D) 10-15(E)	3-5(C) 5-10(D)	ऊपर से 1/4 – 3/4 भाग मिट्टी बह गई है, नाले बनने लगे (e2)	0–3: ढलान के लिए 6–60 मीटर के बीच	धीरे: 1. 25–5, या तीव्र: 125–250	4–8	उप आर्द्र, फसल की उपज अक्सर सूखे से कम हो जाती है, अर्ध शुष्क
IV	S	7.5-22.5	10-15(E)	5-10(D)	10-15(E) 15-25(F)	15-25(F) 25-33(G)	10-15(E) 15-25(F)	3/4 सतही मिट्टी या 1/4 उप मिट्टी बह गई छोटी गलियाँ (e3)		बहुत धीमी गति से ≤ 1.25 बहुत तेजी से >250	8–16	अर्ध शुष्क
V	भूमि क्षमता वर्ग I की तरह विशेषताएँ लेकिन एक या अधिक बाधाएँ जैसे गीलापन या पत्थर एवं चट्टाने या प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों आदि क्षमता वर्ग I भूमि की तरह इसमें भी कटाव का कोई खतरा नही हैं।											
VI		< 7.5	15-25(F)	10-15(E)	25-33(G)	33-50(H)	25-33(G) 33-50(H)	गहरी नलीनुमा भूमि (e4) या रेत के टीले	सीमांत भूमि (6मीटर चौड़ी पट्टी मिली सिर के पास)	–	>16	

VII		< 7.5	25-33(G)	15-25(F)		50-100(I)	50-100(I)	गहरी नलीनुमा भूमि (e4) या रेत के टीले	गली के किनारे और बिस्तर	–		
VIII		Rock	> 33	> 25		>100	>100	खराब भूमि मिट्टी न के बराबर	गली के किनारे और बिस्तर	–		
Sicl:सिल्ट क्ले, cl:क्ले लोम, l:लोम, sl:सैंड़ी लोम, sil:सिल्ट लोम, scl सैंड़ी क्ले लोम, sl:सिल्ट लोम, Sc:सैंड़ी क्ले, Sic:सिल्ट क्ले, c:क्ले, ls:लोमी सैंड़– मिट्टी के टेक्सचर है												

भारतीय भाषाएँ नदियाँ है और हिंदी महानदी ।

– रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं के कठोर श्रम का आँकलन

इंदु रावत, के आर जोशी, सुरेश कुमार, अम्बरीश कुमार एवं बाँके बिहारी

उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में महिलाएँ कृषि की आधारशिला है। यह कहना गलत नहीं होगा कि कृषि का लगभग अधिकांश भार महिलाओं पर ही है, क्योंकि सामान्यतः पुरूष रोजगार व अन्य कारणों से गाँव से बाहर ही रहते है। कृषि से सीधे तरीके से जुड़ी होने के कारण महिलाओं को कृषि क्षेत्र की काफी जानकारी होती है। कृषि के साथ–साथ घरेलू कार्यो हेतु महिलाएँ वन एवं जल संपदा पर भी आश्रित होती है। इससे यह स्पष्ट है कि महिलाओं की प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता अधिक है और वे प्रकृति के काफी निकट भी हैं। कृषि कार्यों में महिलाओं की अधिक भूमिका होने से कृषि से संबंधित विपरीत बदलावों, प्रदूषण/पर्यावरण की क्षति का उन पर ज्यादा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किन्तु महिलाओं को ही इन समस्याओं से पार पाने व इनके प्रबंधन में निपुणता होती हैं।

कृषि कार्यों में घनिष्ट रूप से संबद्ध हाने के फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों जैसे वन एवं जल की उपलब्धता एवं गुणवत्ता का इनके जीवन पर भी काफी प्रभाव पड़ता है। उत्तराखण्ड प्राकृतिक संसाधनों में भरपूर है, परंतु लगातार वन दोहन, अवैज्ञानिक कृषि पद्धति, असंतुलित जल चक्र एवं प्राकृतिक आपदाओं आदि के चलते राज्य के हिमालयी जलाशयों पर उनकी जल संग्रहण क्षमता, जल की गुणवत्ता पर बड़ा संकट मंडरा रहा है। तेजी से बढ़ती आबादी, के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक दबाव होने से समस्या उलझती जा रही है। इस पृष्ठभूमि के साथ भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान देहरादून द्वारा एक सर्वेक्षण किया गया, जिसमें पहाड़ी क्षेत्रों में जल संकट एवं महिलाओं में बढ़ते कठोर श्रम पर अध्ययन किया गया।

कार्यविधि

देहरादून में कालसी ब्लॉक के मध्य हिमालय के चार गाँवों में सर्वेक्षण किया गया। प्रत्येक गाँव से 20 महिलाओं एवं 05 पुरूषों को साक्षात्कार के लिए चुना गया। इसके अतिरिक्त सामूहिक चर्चा द्वारा भी आँकड़े इकटठे किये गये। सर्वेक्षण के माध्यम से जल स्त्रोतों से संबंधित कई जानकारियाँ ली गई, जैसे जल स्त्रोतों की विविधता एवं संख्या, उनके विभिन्न उपयोग, उनका स्वामित्व, जल स्त्रोंतों की वर्तमान अवस्था, जल के संरक्षण एवं रख–रखाव के लिए ग्रामीण लोगो द्वारा किये गये प्रयास आदि। इसके अतिरिक्त महिलाओं द्वारा किए जा रहे कार्य जैसे पानी भरकर लाना, चारा लाना एवं लकड़ियाँ लाने में किये गये शारीरिक श्रम आदि पर भी जानकारी एकत्र की गई।

परिणाम

प्राकृतिक जल स्त्रोंतों की उपलब्धता जानने के लिए गावों का सर्वेक्षण किया गया। पहले गाँव में 07 प्राकृतिक स्त्रोतों में से पिछले 05 सालों में केवल 03 ही कार्यत्मक है। इसी तरह से अन्य 03 गाँवों में भी क्रमशः 4, 10 व 4 स्त्रोंतों में सें केवल 1, 3 एवं 2 स्त्रोतों में ही पानी उपलब्ध है। सामान्यतः ये स्त्रोंत ग्राम पंचायत के अधीन होते है। इन स्त्रोतों के पानी का उपयोग मुख्यतः पीने के लिए व घरेलू कार्यों में होता है। एटा (1999) के अनुसार झरने (स्प्रिंग) का पानी, पर्वतीय धारा (स्ट्रीम), मानव निर्मित वर्षा जल संग्रहण संरचना घरेलु उपयोग के लिए बनाए गए है। खुले तालाब व टैंक का पानी, पशुओं, सिंचाई एवं कपड़े धोने में प्रयोग किया जाता है। मानव उपयोग के लिए भूमिगत नाला/धारा का पानी उपयोग किया जाता है। ये सभी संरचनाएं आम संसाधन थे जो कि क्षेत्रीय लोगों के अधीन थे व उनके द्वारा इनका उपयोग एवं रख–रखाव होता है। हालाँकि राज्य सरकार की एजेंन्सयों द्वारा बहुत गूल भी बनाये गये हैं।

पर्वतीय महिलाओं द्वारा कठोर श्रम –घरेलु कार्यों के अतिरिक्त

दोहराव वाले कार्य

पर्वतीय महिलाओं द्वारा तीन प्रमुख कार्य किये जाते है जैसे स्त्रोत से पानी भरकर लाना, पशुओं को खिलाने हेतु

चारा लाना एवं ईंधन के लिए जंगल से लकड़ियाँ बटोरना व लाना। सबसे अधिक किये जाने वाला कार्य पशुओं के लिए चारा लाना है जिसे एक दिन में दो बार (सुबह और शाम) किया जाता है। तत्पश्चात् पानी लाना भी दोहराव वाला कार्य पया गया, जिसे लगभग 70 प्रतिशत लोग दो बार लाते है और लगभग 30 प्रतिशत लोग इसे दिन में चार बार भी लाते है। ईंधन हेतु लकड़िया लाने का कार्य हफ्ते में एक बार 75 प्रतिशत महिलाओं द्वारा किया गया जबकि 25 प्रतिशत महिलाओं द्वारा इसे महीने में एक बार किया गया, इसलिए लकड़ियां लाना सबसे कम आवृति वाला कार्य था।

कार्यों की अनिश्चित समय सीमा

लगभग 75 प्रतिशत महिलाओं ने सबसे ज्यादा समय चारा काटने व लाने में लगाया (2–4 घंटे/दिन) क्योंकि चारा लाने के लिए उन्हें जंगल में काफी चलकर चारा ढूँढ़ना पड़ता है। चारे वाले पेंड़ों की कमी के कारण चारा लाने में उन्हें काफी समय लग जाता है। इसके बाद पानी लाने में भी समय खर्च होता है। पानी लाने में 50 प्रतिशत महिलाओं द्वारा प्रतिदिन 2 घंटे और अन्य 50 प्रतिशत द्वारा प्रतिदिन 2–4 घंटे का समय लगता है, जबकि इस समय को महिलाओं द्वारा घर के किसी उत्पादकता वाले कार्यों में भी लगाया जा सकता है। ईंधन की लकड़ियाँ लाने के लिए 25 प्रतिशत महिलाओं को प्रतिदिन 6 घंटे से ज्यादा समय लग जाता है, वहीं लगभग 50% महिलाओं को लकड़ियाँ लाने में 4–6 घंटे प्रति दिन लगते है। लकड़ियाँ इकट्ठा करने के लिए भी महिलाओं को जंगल में काफी भटकना पड़ता है, इसलिए समय बहुत अधिक लगता है।

कार्यों को करने में आ रही कठिनाई

महिलाओं द्वारा किये गये तीन प्रमुख कार्यों में कठिनाई के स्तर का भी अध्ययन किया गया अर्थात् उन्हें किस कार्य को करने में कठिनाई महसूस हुई और कौन सा कार्य तुलनात्मक रूप से सरल था। लगभग 80% महिलाआअें द्वारा बताया गया कि ईंधन के लिए लकड़ियाँ लाना कठिन कार्य है क्योंकि इनका वजन काफी अधिक (> 30 किलो) होता है और इनको इकट्ठा करने के लिए महिलाओं को जंगल में काफी दूर तक जाना पड़ता है। करीब (30%) महिलाओं द्वारा पानी लाना भी कठिन कार्य बताया गया क्योकि पानी लाने के लिए पीतल का बंटा प्रयोग किया जाता है जिसका वजन 20 किलो तक होता है। पशुओं के लिए चारा लाना भी 25% महिलाओं द्वारा कठिन कार्य बताया गया।

निष्कर्ष

इस शोध के निष्कर्ष निम्नलिखित है:–

- सर्वेक्षण किये गये सभी गाँवों में पर्याप्त जल स्त्रोत उपलब्ध हैं किन्तु 1 या 2 स्त्रोत को छोड़कर शेष स्त्रोत सूख गये है।
- सामान्यतः गाँवों में पाईपलाइन की सुविधा उपलब्ध है लेकिन ऊँचाई वाले गाँवों में पाईपलाइन में पानी बहुत कम आता है। इसके अलावा, बरसात के मौसम में पहाड़ों से मलबा गिरने से पाईपलाइन खराब हो जाती है जिससे महिलाओं को पानी लेने के लिए स्त्रोत तक जाना पड़ता है।
- पानी लाने के लिए महिलाओं को 3–5 चक्कर लगाने पड़ते है और 1 चक्कर लगाने में लगभग आधे से 1 घंटे का समय लगता है।
- इसी तरह से चारा एवं ईंधन हेतु लकड़ियां लाने के लिए भी उन्हें लंबी दूरी तय करनी पड़ती है।
- महिलाओं द्वारा किये जाने वाले तीनों कार्यों (पानी लाना, चारा लाना एवं ईंधन लाना) में ईंधन की लकड़िया इकट्ठा करना सबसे ज्यादा कठिन कार्य में पाया गया क्योंकि इसके लिए जंगल में काफी दूर तक चलना पड़ता है।

हिंदी जैसी सरल भाषा दूसरी नहीं है।

– मौलाना हसरत मोहानी

मृदा अपरदन और संरक्षण

मनोज कुमार भट्ट, रिनी लाबनया, शिखर कौशिक एवं विनित कुमार

मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है जो कि जीवन बनाये रखने में सक्षम है। किसानों के लिए मृदा का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि किसान इसी मृदा से प्रत्येक वर्ष स्वस्थ व अच्छी फसल की पैदावार पर आश्रित होते हैं। बहते हुए जल या वायु के प्रवाह द्वारा मृदा के पृथक्कीकरण तथा एक स्थान से दूसर स्थान तक स्थानान्तरण मृदा अपरदन से प्रभावित लगभग 150 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल है। इसमें से 69 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल अपरदन की गंभीर स्थिति की श्रेणी में रखा गया है। मृदा की ऊपरी सतह का प्रत्येक वर्ष अपरदन द्वारा लगभग 5334 मिलियन टन से भी अधिक क्षय हो रहा। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 57 प्रतिशत भाग मृदा ह्रास से ग्रस्त है, जिसका 45 प्रतिशत जल अपरदन से तथा शेष 12 प्रतिशत वायु अपरदन से प्रभावित है। अतः मृदाओं में जल से अपरदन एक प्रमुख समस्या है।

मृदा अपरदन

मृदा कृषि का आधार है। यह मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं यथा खाद्य्य पदार्थ, ईंधन तथा पशुओं के लिए चारे की पूर्ति करती है। इतनी महत्वपूर्ण होने के उरान्त भी मिट्टी के संरक्षण के प्रति अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जाता गया, इसकी गंभीरता को सही मायने में नहीं आँका गया है। फलतः, मिट्टी अपनी उर्वरा शक्ति खोती जा रही है। मृदा को अपने स्थान से विविध रासायनिक, भौतिक एवं जैविक क्रियाओं द्वारा हटाया जाना मृदा अपरदन कहलाता हैं। मृदा अपरदन से मृदा की अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। उर्वरा शक्ति का ह्रास नाइट्रोजन की कमी, अम्लता/क्षारता का बढ़ना, कॉस खरपतवार का बढ़ना एवं मरूस्थलीय रेत का प्रसार मुख्य हैं।

मृदा अपरदन के कारण

इस प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण कारक हैं जल और वायु। तेज वायु एवं बहते हुए पानी के कारण मिट्टी का कटाव होता है। कई दूसरे कारक, कोई अन्य प्राकृतिक एवं मानव निर्मित हैं, जिससे मृदा अपरदन तेजी से होता है। बढ़ती हुए जनसंख्या की खाद्य, निवास, पशुचरान की आवश्यकता की पूर्ति हेतु अधिक भूभागों की आवश्यकता होती है, जिससे लिए जंगल काट दिए जाते हैं। हवा से होने वाला अपरदन अधिकर शुष्क एवं अर्ध शुष्क स्थानों में होता है। जहाँ भारी वर्षा होती है एवं खड़ी ढलान पाई जाती हैं, वहां पानी से होने वाला अपरदन प्रमुख है। यह भारत की एक प्रमुख समस्या है और विभिन्न स्थानों पर शीट अपरदन एवं घाटी अपरदन के रूप में होते हैं।

भारत में मृदा अपरदन के क्षेत्र

वर्तमान समय में मृदा अपरदन की समस्या भारतीय कृषि की एक बड़ी समस्या है। देश में प्रति वर्ष 5 बिलियन टन मिट्टी का अपरदन होता है। मृदा अपरदन के मुख्य कारणों के आधार पर भारत को निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

उत्तर–पूर्वी क्षेत्र – मृदा अपरदन का मुख्य कारण तीव्र वर्षा, बाढ़ तथा व्यापक स्तर पर नदी के किनारों का कटाव है।

हिमालय की शिवालिक पर्वत श्रेणियां – वनस्पतियों का विनाश पहला कारण है। गाद जमा होने से नदियों में बाढ़ आ जाना दूसरा महत्वपूर्ण कारण है।

राजस्थान व दक्षिणी पंजाब का शुष्क क्षेत्र – पंजाब व राजस्थान के कुछ भागों यथा कोटा, बीकानेर, भरतपुर तथा जोधपुर में वायु द्वारा मृदा अपरदन होता है।

नदी तट – उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश की कृषि भूमि के काफी विस्तृत भाग का बीहड़ों में परवर्तित होना मृदा अपरदन का परिणाम है।

दक्षिण भारत के पर्वत – दक्षिणी पहाड़ी क्षेत्र में गहन मृदा अपरदन तीव्र ढाल, तीव्र वर्षा तथा कृषि का अनुचित ढंग से होना है।

मृदा अपरदन की प्रक्रिया

जब वर्षा जल की बूंदें अत्यधिक ऊंचाई से मृदा सतह पर गिरती है तो वे महीन मृदा कणों को मृदा पिंड से अलग कर देती हैं। ये अलग हुए मृदा कण जल प्रवाह द्वारा फिसलते या लुढ़कते हुए झरनों नालों या नदियों तक वर्षा जल के साथ चले जाते हैं। अपरदन प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण होते हैं।

1– मृदा कणों का ढीला होकर अलग होना – अपरदन
2– मृदा कणों का विभिन्न साधनों /कारको द्वारा दूसरे स्थान तक पहुँचना – स्थानान्तरण
3 – मृदा कणों का जमाव – निपेक्षण

होती रहती है। यह अपरदन मरूथलीय प्रदेशों तथा उनके निकटवर्ती भागों में होता है। भारत में थार का मरूस्थल एक लाख वर्ग किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्र में फैला हुआ है।

2.परतदार अपरदन – इस प्रकार का अपरदन समान्यत नदी घाटियों तथा बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों में होता है। जब जल एक परत कें रूप में बहता है तो मृदा की पतली परतों को अपने साथ बहा ले जाता है। इस प्रकार के अपरदन में लम्बें समय में मृदा की परत हट जाती है और मृदा अनुपजाऊ हो जाती है।

3.नदिका अपरदन – धरातलीय पदार्थ, सामान्यतः मृदा, का बहते हुए जल के द्वारा निष्कासन नदिका अपरदन कहालाता है। इस प्रक्रिया के अन्तगर्त बहुत सी छुद्र सरिताएँ वर्षा ऋतु में बन जाती है तथा इनकी गहर्राइ केवल कुछ सेंटीमीटर होती है। ये अपरदन भी करती है और इस प्रक्रिया को ही नदिका अपरदन कहा जाता है।

4. अवनालिका अपरदन – जल जब ढाल की ओर नालियों में बहता है तो वह मृदा कणों को उखाड कर बहा ले जाता है इससे अवनालिकाएँ बन जाती है। ये धीरे – धीरे गहरी और चौड़ी होकर विस्तृत क्षेत्रों में फैल जाती है। इस प्रकार के अपरदन को अवनालिका अपरदन कहते है।

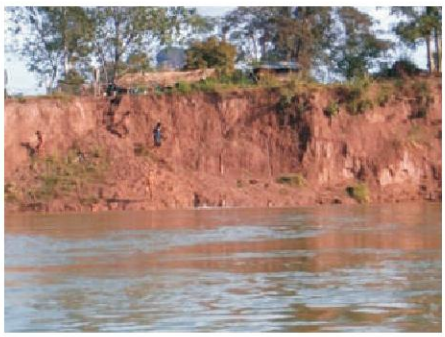

मृदा अपरदन के प्रकार

मृदा अपरदन के प्रकार– मृदा अपरदन मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है।

1. पवन अपरदन 2.परतदार अपरदन 3. नदिका अपरदन 4. अवनालिका अपरदन

1.पवन अपरदन – मरूस्थलीय प्रदेशो में पवन/वायु मृदा के महीन कणों व बालू को पास की कृषि भूमियो में बिछाती रहती हैं, जिस से इन कृषि भूमियों की उर्वरा शक्ति क्षीण

मृदा अपरदन रोकने के उपाय

वन संरक्षण – वृक्षों की जड़ें मृदा पदार्थ को बांधे रखती है। वनों की अधिक कर्टाइ के कारण मृदा अपरदन तेजी से होता है। यही कारण है कि सरकार ने वनों की कर्टाइ पर रोक लगा दी है तथा उन्हे सुरक्षित घोषित कर दिया है। मृदा संरक्षण की यह विधि सभी प्रकारों के भूभागों के लिए उपयुक्त है। साथ ही वनो से वर्षा होती है तथा इनसे मृदा निमार्ण की प्रक्रिया भी तेज हो जाती है।

बाढ नियंत्रण – वर्षा ऋतु में नदियों में जल की मात्रा बढ जाती है। इस से मृदा के अपरदन में वृद्धि होती है। बाढ़ नियंत्रण के लिए नदियों पर बॉध बनाए गए है। इस से मृदा का अपरदन रोकने के लिए मदद मिलती है। नदियों के जल को नहरों द्वारा सुखाग्रस्त क्षेत्रों की ओर मोड़कर तथा जल संरक्षण की अन्य सुनियोजित विधियों द्वारा भी बाढ़ों को रोका जा सकता है।

वृक्षारोपण – वृक्षारोपण द्वारा हम मृदा संरक्षण को प्रोत्साहन दे सकते है। मरूस्थलीय प्रदेशों के आसपास के क्षेत्रो में वृक्षारोपण द्वारा मृदा संरक्षण किया जा सकता है। इसी प्रकार नदी–घाटी बंजर भूमियों तथा पहाड़ी ढ़ालों पर वृक्ष लगाना मृदा संरक्षण की विधि है। इस से इन स्थानों पर मृदा अपरदन कम हो जाता है ।

बंध बनना – अवनालिका अपरदन से प्रभावित भूमि में बंध या अवरोध बनाकर मृदा अपरदन को रोका जा रहा हैं। यह विधि न केवल मृदा अपरदन को रोकती हैं, वरन इससे मृदा का ऊपजाऊपन बनाए रखने में मदद मिलती हैं। साथ ही जल संसाधनो के संरक्षण तथा भूमि को समतल करने में भी सहायता मिलती है।

नियोजित चराई – अति चराई से वनस्पत्ति आवरण समाप्त हो जाता है जिससे मृदा ढ़ीली हो जाती है। इन मृदाओ को जल आसानी से बहा ले जाता है। इन क्षेत्रों में नियोजित चर्राइ से वनस्पत्ति आवरण को बचाया जा सकता हैं और मृदा अपरदन कम कर मृदा संरक्षण किया जा सकता हैं।

सीढ़ीदार खेत बनाना – सीढ़ीदार खेत बनाने से मतलब चौड़ें समतल चबूतरे बनाने से हैं। पहाड़ी ढ़ालों पर यदि इस प्रकार के चबूतरे बना दियें जाए तो ढ़लान का समतल होने के कारण मृदा संरक्षण होगा, क्योंकि मृदा ढलाने से नही बहेगी और अपरदन की क्रिया कम हो जायेगी। इस की जल संसाधनों का समुचित उपयोग होगा और इस क्षेत्र में उत्पादन का कार्य भी किया जा सकेगा।

समोच्य रेखीय जुताई – मृदा संरक्षण की यह विधि तरंगित भूमि वाले प्रदेशों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं। भूमि को समान ऊँचाइ पर जोतने से हल के कूंड ढ़ाल के आरपार बन जाती हैं इससे मृदा के अपरदन की गति कम हो जाती है। यह विधि मृदा में आर्द्रता व उपजाऊपन बनाये रखने में भी सहायक है।

कृषि की पट्टीदार विधि – इस विधि में खेतो को पट्टियों में बॉट दिया जाता है एक पटटी में एक साल खेंती की जाती है जबकी दूसरी पट्टी बिना जोते–बोए खाली पड़ी रहती है। छोड़ी गई पटटी की वनस्पति का आवरण मृदा अपरदन को रोकेते है तथा मृदा के उपजाऊपन को बनाये रखता हैं। अगले वर्ष इस क्रिया को बदल दिया जाता है।

सस्यार्वतन – यह विधि संसार के अधिकांश देशों में अपनायी जाती रही है जहाँ पर जनसंख्या के दबाव के कारण खेती की जमीन कम हो गई हैं। इससें खेती का उपजाऊपन बनाए रखने के लिए चुने हुए खेतो में विभिन्न फसलों को बारी–बारी से बोते है। इस प्रकार सस्यार्वतन के द्वारा ऐसे खेतों की उर्वरता भी बनी रहती है। जिनमें लगातार कोई न कोई फसल खड़ी रहती है, और मृदा अपने स्थान पर बनी रहती है, अर्थात् उसका यथास्थान संरक्षण होता है।

भूमि उद्धार – मृदा संरक्षण की यह विधि नदी घाटी और पहाड़ी प्रदेशों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं। इस विधि में भूमियों को समतल करके अपरदन क्रिया रोकी जा सकती हैं। हमारे देश में चम्बल व यमुना नदियों के उत्खात भूमियों वाले विस्तृत क्षेत्रों को इस विधि द्वारा समतल किया गया हैं।

मृदा संरक्षण

मिट्टी एक अमूल्य प्राकृतिक संसाधन है, जिस पर संपूर्ण प्राणि जगत निर्भर है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ मृदा अपरदन की गंभीर समस्या है, वहाँ मृदा संरक्षण एक अनिवार्य एवं अत्याज्य कार्य है। मृदा संरक्षण एक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत न केवल मृदा को एक स्थान पर रखना अपितु उसकी गुणवत्ता को बनाये रखने का प्रयास किया जाता है और उसमें सुधार के भी प्रयास किये जाते है।
मृदा संरक्षण की विधियाँ निम्नलिखित हैं

(क) फसल सम्बन्धी

1. फसल चक्रल – अपरदन को कम करने वाली फसलों का अन्य फसलों के साथ चक्रीकरण कर अपरदन को रोका जा सकता है । इससे मृदा की उर्वरता भी बढ़ती है ।

2. पट्टीदार खेती – यह जल–प्रवाह के वेग को कम कर के अपरदन को रोकती है ।

3. सीढ़ीनुमा खेती – इससे ढ़ाल में कमी लाकर अपरदन को रोका जाता है। इससे पर्वतीय भूमि को खेती के उपयोग में लाया जाता है।

4 पलवार पद्धति – खेती में फसल अवशेष की 10–15 सेमी पतली परत बिछाकर मृदा अपरदन तथा जल वाष्पीकरण को रोका जा सकता है। इस पद्धति से रबी की फसल में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है।

5 रक्षक मेखला – खेतों के किनारे पवन की दिशा में समकोण पर पंक्तियों में वृक्ष तथा झाड़ी लगाकर पवन द्वारा होने वाले अपरदन को रोका जा सकता है।

6 खादों का प्रयोग – गोबर की खाद, सनई अथवा ढेंचा की हरी खाद एवं अन्य जीवांश खादों के प्रयोग से भू–क्षरण में कमी आती है, क्योंकि ये पदार्थ मिट्टी में ऊपरी आवरण की तरह बिछे होते है।

(ख) वनरोपण सम्बन्धी।

वन, मृदा अपरदन को रोकने में काफी सहायक होते हैं। इसके तहत दो कार्य आते हैं।

(अ) वानिकी संबंधित

1–नवीन क्षेत्रों में वनों का विकास करना जिससे मिट्टी की उर्वरता एवं गठन बढ़ता है। इससे वर्षा जल एवं वायु से होने वाले अपरदन में कमी आती है।

2–जहाँ वनों का अत्यधिक दोहन, अत्यधिक पशुचारण हुआ हो एवं भूमि की सतह ढलवा हो, वहाँ नये वन लगाना।

(ब) यांत्रिक विधि

यह पद्धति अपेक्षाकृत महंगी है परन्तु प्रभावकारी भी है।

1–कंटूर जोत पद्धति– इसमें ढ़ाल वाली दिशा के समकोण दिशा में खेतों को जोता जाता है, ताकि ढ़ालों से बहने वाला जल मृदा को न काट सके।

2–वेदिका का निर्माण कर अत्यधिक ढ़ाल वाले स्थान पर अपरदन को रोकना।

3–अवनालिका नियंत्रण– अपवाह जल रोककर

(i) – वनस्पति आवरण में वृद्धि करना

(ii) – अपवाह के लिए नये रास्ते बनाकर, जिस से जल प्रवाह का वेग कम हो।

4–ढ़ालों पर अवरोध (वनस्पति का या भौतिक) खड़ा करना।

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

– स्वामी दयानंद

मृदा स्वास्थय में पीएच की उपयोगिता एवं उसका प्रबंधन

गंभीर सिंह, राजीव रंजन एवं गोपाल कुमार

टिकाऊ उत्पादन के लिए मिट्टी के स्वास्थ्य का प्रबंधन आवश्यक हो गया है। मिट्टी के स्वास्थ्य की स्थिति के लिए उपयुक्त संकेतकों की पहचान, मिट्टी के स्वास्थ्य के प्रबंधन के लिए अनिवार्य है। कई भौतिक (थोक घनत्व, सरंध्रता, संरचना, वॉटर स्टेबल संरचना आदि) रासायनिक (कार्बनिक पदार्थ, पीएच, ईसी, केटायन एक्सचेंज क्षमता, पोषक सामग्री आदि) और जैविक संकेतक (माइक्रोबियल विविधता, आबादी, गतिविधियाँ आदि) संबंधित स्थिति का संकेत के रूप में उपयोग होता है। मृदा पीएच सबसे बहुमुखी संकेतको में से एक है जो मिट्टी के कई रासायनिक भौतिक और जैविक गुणों को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, माप की सरलता ने पीएच को मिट्टी प्रबंधन और संशोधन के लिए प्रायः उपयोग किए जाने वाला संकेतक का स्वरूप दिया है।

पीएच एक फ्रांसीसी शब्द है जिसका अर्थ है "हाइड्रोजन (H^+) की शक्ति"। यह मिट्टी में हाइड्रोजन आयन (H^+) और हाइड्रोक्साइल (H^o) का सक्रियता का माप है। यह मिट्टी की अम्लता (कम पीएच) या क्षारीयता (उच्च पी एच) को संदर्मित करता है। पी एच को परिभाषित एक बिलयन में हाइड्रोनियम आयनों (H^+ या H_3O^+) की सक्रियता की ऋणात्मक लघुगणक (आधार 10) के रूप में किया जाता है। पीएच स्केल शून्य से 14 तक होता है। मिट्टी में, इसे पानी के साथ मिश्रित मिट्टी के एक घोल में मापा जाता है और आमतौर पर इसकी माप 3 से 10 के बीच आती है। जिसमें 7 की मान तटस्थ होती है। अम्लीय मिट्टी की पीएच 7 से कम तथा और क्षारीय मिट्टी की पीएच 7 से अधिक होती है। अत्यंत अम्लीय मिट्टी का पीएच < 3.5 और अत्याधिक से क्षारीय मिट्टी का पीएच > 9 पाया जाती है।

मिट्टी में मृदा पीएच को एक सर्व चर (master variable) और अतिमहत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह कई रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है। यह विशेष रूप से विभिन्न पोषक तत्वों के रासायनिक रूपों को नियंत्रित और रासायनिक प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करके पौधे के लिए उनकी उपलब्धता को प्रभावित करता है। अधिकांश पौधो के लिए सर्वोत्तम पीएच सीमा 5.5 और 7.5 के बीच होती है।, हालांकि कई पौधों ने इस सीमा के बाहर पीएच मानो पर पनपने के लिए अनुकूलित हैं।

मिट्टी पीएच मूल्य वर्ग तथा उसकी सीमा

पीएच मापन के विभिन्न तरीके:

- मिट्टी प्रोफाइल का निरीक्षण
- लिटमस
- रासायनिक विधि
- मृदा परीक्षण किट

पीएच क्यों महत्तवपूर्ण है?

मृदा पीएच पौधों के विकास को प्रभावित करने वाले कई कारकों को प्रभावित करता है, जैसे कि:–

- **सूक्ष्म जीव के प्रकार एवं गतिविधि:** उपयुक्त पीएच पर मृदा में उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ और कुछ उर्वरकों से नाइट्रोजन उन्मुक्त करने में जीवाणु कारगर होता है। जीवाणु गतिविधि पीएच सीमा 5.5 से 7.0 के बीच सबसे अधिक पाई गई है। मृदा पीएच के आधार पर खास प्रकार के जीवाणु की प्रचुरता निर्भर है। उदाहरण के तौर पर सामान्य पीएव पर बैक्टीरिया एवं कम पीएच पर कुकुरमुत्ता की संख्या अधिक पाई जाती है।
- **पोषक तत्व निक्षालन:** पोषक तत्वों की निक्षालन दर मिट्टी पीएच सीमा 5.5 से 7.5 की तुलना में पीएच 5.0 से कम की स्थिति में तेजी से होती है।
- **पोषक तत्व उपलब्धता:** पौधे के पोषक तत्व आमतौर पर पीएच सीमा 5.5 से 6.5 में पौधों के लिए सबसे अधिक उपलब्ध होते है। अधिकतर पोषक तत्व की कमी को उपयुक्त पीएच रखकर सुधारा जा सकता है। अम्लीय मिट्टी में मुख्य पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फोस्फोरस, पोटाशियम, सल्फर, कैल्शियम, मैगनिशियम) तथा क्षारीय मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों (लोहा, मैगनीज, बोरोन, ताँबा व जस्ता) की उपलब्धता कम हो जाती है।

मिट्टी पीएच का पोषक तत्व की उपलब्धता पर प्रभाव

- **विशाक्त तत्व:** मिट्टी में पीएच 5.0 से नीचे की स्थिति में एल्यूमीनियम पौधों के विकास के लिए विशाक्त हो जाता है।
- **मिट्टी की संरचना:** पीएच से प्रभावित विशेष रूप से चिकनी मिट्टी की संरचना होती है। इष्टतम पीएच सीमा (5.5 से 7.0) में चिकनी मिट्टी दानेदार होती है जिसमें आसानी से काम किया जा सकता है, जबकि यदि मिट्टी पीएच अत्यधिक क्षारीय हो तो मिट्टी के कण अलग अलग हो जाते है, चिकनी मिट्टी चिपचिपी हो जाती है, मिट्टी में पानी का बहाव कम हो जाता है और खेती करने में कठिनाई होती है।

मिट्टी पीएच को प्रभावित करने वाले कारक

मिट्टी का पीएच उसके अभिभावक पदार्थ की खनिज संरचना तथा उस मूल सामग्री पर मौसम की प्रतिक्रियों पर निर्भर करती है। गर्म तथा आर्द्र वातावरण में, समय के साथ मिट्टी का अम्लीकरण होता है क्योंकि मिट्टी से अपक्षयित पदार्थों का पानी के साथ बहाव हो जाता है। सूखे मौसम में, मिट्टी का अपक्षयण और निक्षालन कम होने से मिट्टी पीएच अक्सर तटस्थ या क्षारीय होता है।

अम्लता के स्त्रोत

मिट्टी अम्लीकरण में कई प्रक्रियाएं योगदान देती है:–

वर्षा: अम्लीय मिट्टी प्राय: उच्च वर्षा के क्षेत्रों में पाई जाती है। वर्षा जल कार्बन डाईऑक्साइड के साथ प्रतिक्रिया कर कार्बनिक अम्ल बनने के कारण वर्षा जल थोड़ा अम्लीय (आमतौर पर पीएच लगभग 5.7) होता है। जब यह पानी मिट्टी के माध्यम से बहता है तो इसका परिणाम मिट्टी से बाइकार्बोनेट के रूप में मिट्टी के क्षारीय धनायनों की लीचिंग होती है और मिट्टी में बचे Al^{+3} और H^+ की सघनता (प्रतिशत) बढ़ जाती है और मिट्टी अम्लीय हो जाती है।

पौधे की गतिविधि: पौधे आयनों के रूप में पोषक तत्व लेते है (उदाहरण के लिए NO^-_3, NH_4^+, Ca^{2+}, $H_2PO_4^-$) और वे अक्सर ऋण आयनों की तुलना में अधिक धन आयन लेते है। हालांकि पौधों को अपनी जड़ों में एक तटस्थ चार्ज बनाए रखना होता है। अतिरिक्त धन आयन की भरपाई करने के लिए, वे जड़ से H^+ आयन मुक्त करते है। कुछ पौधे मिट्टी में कार्बनिक अम्ल को अपनी जड़ों के चारों ओर अम्लीकृत करने के लिए छोड़ते है ताकि तटस्थ पीएच में लौह जैसे

अघुलनशील धातु पोषक तत्वों को घुलनशील बनाने में मदद मिल सके।

उर्वरक का उपयोग: मिट्टी में नाइट्रीकरण की प्रक्रिया द्वारा अमोनियम NH_4^+ उर्वरक नाइट्रेट NO^{-3} में परिवर्तित हो जाता है और इस प्रक्रिया में H^+ निकलता है। कई उर्वरक जैसे यूरिया, अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट इत्यादि की प्रक्रियाओं का अंतिम प्रभाव पीएच को कम करता है।

अम्लीय वर्षा: जीवाष्म ईंधन के जलने से वायुमंडल में सल्फर और नाइट्रोजन ऑक्साइड निकलती है। ये वर्षा जल के साथ प्रतिक्रिया कर सल्फूरिक और नाइट्रिक अम्ल बनाते है। अम्लीय वर्षा भी मृदा पीएच को कम करती है।

अच्छे एवं टिकाऊ उत्पादन के लिए मृदा पीएच का सामान्य स्तर पर पर होना आवश्यक है। अतः अम्लीय मिट्टी का पीएच बढ़ाना एवं क्षारीय मिट्टी का पीएच कम करना किसान के हित में होता है।

अम्लीय मिट्टी का पीएच बढ़ाना

अम्लीय मिट्टी का पीएच बढ़ाने के लिए प्रायः चूने का प्रयोग किया जाता है। पीएच को बदलने के लिए आवश्यक चूना पत्थर की मात्रा चूने के बारिकपन और मिट्टी की बफरिंग क्षमता पर निर्भर करता है। मिट्टी की बफरिंग क्षमता मिट्टी में क्ले की मात्रा व प्रकार और उपस्थित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करती है उच्च क्ले मात्रा और उच्च कार्बनिक पदार्थ वाली मिट्टी की बफरिंग क्षमता अधिक होती है। उच्च बफरिंग क्षमता वाली मिट्टी में पीएच बढ़ाने के लिए अधिक मात्रा में चूने की आवश्यकता होती है। चूने के अलावा अन्य संशोधनों का उपयोग मिट्टी के पीएच को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है जिसमें लकड़ी की राख, औद्यगिक कैल्शियम ऑक्साइड (जला हुआ चूना), मैगनीशियम ऑक्साइड और कैल्शियम सिलिकेट आदि शामिल है।

क्षारीय मिट्टी के पीएच को कम करना

अम्लीकरण एजेंटों या अम्लीय कार्बनिक पदार्थों का उपयोग कर क्षारीय मिट्टी के पीएच को कम किया जा सकता है। तात्त्विक सल्फर (90–99%S) का 300–500 किलो/हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाता है। ऑक्सीकरण कर सल्फर धीरे–धीरे सल्फूरिक अम्ल बनाता है, जिससे पीएच घटने लगता है। अम्लीय उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट,अमोनियम नाइट्रेट और यूरिया, मिट्टी के पीएच को कम करने में मदद करता है। हालांकि, उच्च कैल्शियम कार्बोनेट (2% से अधिक) वाले उच्च पीएच वाले लवण मिट्टी के पीएच को कम करने के प्रयास के लिए बहुत महंगा और/या बड़े क्षेत्रफल के लिए अप्रभावी हो सकता है। ऐसे मामलों में फॉस्फोरस, लौह, मैंगनीज, तांबे और/या जस्ता का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि पौधों का कम विकास के इन पोषक तत्वों की कमी के कारण होता है। इन तत्वों के मिट्टी में प्रयोग से पौधों की बढ़वार अच्छी होती है।

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

– जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर

संरक्षण खेती, कार्बन अभिग्रहण- भारतीय कृषि के लिए संभावनाएँ

वी सी पांडे, पी आर भटनागर, डी दिनेश, विजय काकडे एवं गौरव सिंह

संरक्षण खेती कृषि की एक पुरानी संकल्पना है जिसमें अच्छी फसल की पैदावार का स्तर बनाए रखने के साथ–साथ संसाधनों की गुणवत्ता का भी ध्यान रखा जाता है ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं के साथ–साथ भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं एवं पर्यावरण को सुनिश्चित/सुरक्षित किया जा सके। इसमें खेती की जमीन को या तो बिलकुल भी नहीं जोता जाता (जुताई रहित कृषि) या फिर कम से कम जुताई होती है। संरक्षण या न्यूनतम जुताई संबंधित प्रारंभिक अनुसंधान चिसेल प्लाऊ के पूर्वकालीन रूप पर आधारित था जिसके द्वारा पौधों के अवशेषों को मृदा के ऊपरी सतह पर वायु व जल कटाव को कम करने के लिए बनाए रखा जा सके। बिना जुताई खेती आदि प्रथाएँ भी इसी दौरान अनुसंधान द्वारा प्रचलन में आई। खेती की ये सब प्रथाएँ सामूहिक रूप से संरक्षण खेती कहलाई गई। कालांतर में इन पर काफी अनुसंधान हुआ तथा मल्च खेती तकनीकी, बिना जुताई खेती आदि पर विस्तृत रूप से लिखा गया।

संरक्षण खेती

वर्तमान में संरक्षण खेती की आधुनिक अवधारणा मूलतः तीन आपस में जुड़ी सिद्धातों का समावेश है, 1. यांत्रिक रूप से मिट्टी में खलल को कम करना या टालना(बिना जुताई बीज बोने की क्रिया) 2. पौधों (फसल अवशेष, फलियाँ और हरी खाद/ कवर फसल) पर आधारित कार्बनिक मल्च से निरंतर मिट्टी में कवर बनाए रखना और 3. वर्षा आधारित और सिंचित खेती प्रणालियों के फसल चक्र में विभिन्न पौधों की प्रजातियों का समावेश (कृषि, बागवानी, कृषि वानिकी, जड़ और कंद की फसले) जिनमें वार्षिक और बारहमासी फसल, पेड़ झाड़ियाँ और चारागाह शामिल है तथा जो मिट्टी की गुणवत्ता और सिस्टम लचीलापन बढ़ाने में योगदान करते है।

संरक्षण खेती के लाभ

मिट्टी को स्वस्थ तथा उसकी पैदावार को बनाए रखने के लिए यह एक महत्तवपूर्ण तकनीकी है जिससे मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की मात्रा तथा जैविक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। मृदा में जैविक गतिविधियाँ कई प्रकार से

मृदा परितंत्र सेवाओं () में इजाफा करती है। मिट्टी की संरचना, संरंध्रता (), मृदा जीवन, जैव विविधता का संरक्षण तथा मृदा कार्बनिक पदार्थ अपघटन कम करती है। इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल को समुचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते है। कार्बनिक पदार्थ का मृदा के भौतिक गुणों जैसे जल धारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय, मृदा पारगम्यता दर, पोषक तत्व प्रतिधारण (रिटेंशन) को फसल के जड़ीय क्षेत्र (राइजोस्फियर) में बढ़ाने में मुख्य भूमिका प्रदान करती है। संरक्षण खेती के अंदर किसान का मित्र कहे जाने वाले केंचुऐ की संख्या में वृद्धि होती है। फसलो की जड़ों एवं केंचुऐ द्वारा बनाये हुये छिद्रों में पानी एवं हवा का अनुपात बना रहता है जिस से फसलों की वृद्धि एवं विकास सही ढंग से होता है।

फसल, फसल उत्पाद व मृदा अवक्रमण के आधार पर सामान्यतः संरक्षण खेती से विभिन्न फायदे होते है जैसे ईंधन ऊर्जा या मैनुअल श्रम में 70% की कमी, 50% तक कम उर्वरक का उपयोग, कीटनाशकों और जड़ी बूटी के उपयोग में 20% या अधिक की कमी, 30% कम पानी की आवश्यकता तथा कृषि मशीनरी पर कम लागत व्यय ।

संरक्षण खेती द्वारा मृदा कार्बन अनुक्रमण में वृद्धि मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार, नाइट्रोजन उपयोग दक्षता, कृषि में पानी के उपयोग की क्षमता और ईंधन की खपत कम करके ग्रीन हाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है खेती के तरीके में बदलाव की। जैसे फसल चक्र में बारहमासी फसलों या इंटरक्रॉप या कवर क्रॉप का समावेश करके प्रभावी बढ़ते

मौसम का विस्तार करना ताकि प्रकाश संश्लेषण करके अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड का अभिग्रहण किया जा सके।

ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन व क्योटो संधि

क्योटो संधि दुनियाभर में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन कम करने के लिए एक महत्तवपूर्ण अंतराष्ट्रीय और कानूनी बाध्यकारी समझौता है। यह संधि 16 फरवरी, 2005 को अस्तित्व में आयी। 2008 में भारत समेत 183 देशों ने इस संधि को अपनी सहमती दी है। क्योटों संधि की विशेषता यह है कि औद्योगिक देशों द्वारा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने के लिए लक्ष्य तय करता है। ग्रीनहाउस गैसों में कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर हेक्साफ्लोराइड, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन और परफलोरोकार्बन शामिल है। संधि के अनुच्छेद 6 में वर्णित प्रणाली, जो 'संयुक्त कार्यान्वयन' के नाम से जानी जाती है, के अंतर्गत उत्सर्जन कटौती करने या उसे सीमित करने की प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए देश को किसी दूसरे देश की उत्सर्जन उन्मूलन परियोजना या

उत्सर्जन कटौती से ईआरयू कमाने की अनुमति दी गई है, जो एक टन कार्बन डाई ऑक्साइड के बराबर होता है और जिसे क्योटो लक्ष्य को पूरा करने के क्रम में गिना जा सकता है।

कार्बन अभिग्रहण

वर्तमान में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने के लिए महत्तवपूर्ण अंतराष्ट्रीय और कानूनी बाध्यकारी समझौता दुनियाभर में हुआ है। यह समझौता औद्योगिक देशों द्वारा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने के लिए लक्ष्य तय करता है। दुनियाभर में चल रही औद्योगिक गतिविधियों के कारण ही वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का वर्तमान उच्चस्तर आया है जिसके लिए मूलतः विकसित देशों की नीतियाँ जिम्मेदार है। यह संधि विकसित देशों पर 'समान लेकिन विशिष्ट जिम्मेदारियों' के आधार पर बड़ी जिम्मेदारी रखती है।

संधि के अनुच्छेद 12 में परिभाषित स्वच्छ विकास प्रणाली एक प्रतिबद्ध देश को उत्सर्जन कटौती या उत्सर्जन को सीमित करने के लिए विकासशील देशों में उत्सर्जन कटौती परियोजनाएँ लागू करने की अनुमति देती है। ऐसी परियोजनाए बिक्री योग्य प्रमाणित उत्सर्जन कटौती क्रेडिट अर्जित कर सकती है। प्रत्येक क्रेडिट एक टन कार्बन डायऑक्साइड के बराबर होता है, जिसे क्योटो लक्ष्यों को पूरा करने में क्रम में गिना जा सकता है।

कार्बन बाजार

इसका उद्देश्य लागत–प्रभावी ढंग से उत्सर्जन सीमा तय तथा उत्सर्जन इकाइयों के व्यापार, जो कि उत्सर्जन में कमी का प्रतिनिधित्व करने वाले तंत्र हैं, करके ग्रीनहाउस गैस/कार्बन उत्सर्जन को कम करना है। कैप–एंड–ट्रेड स्कीम कार्बन डाइऑकसाइड और अन्य उत्सर्जन नियंत्रित करने का सबसे लोकप्रिय तरीका है। इस योजना (कार्बन उत्सर्जन को कम करना) में प्रबंध निकाय द्वारा स्वीकार्य उत्सर्जन पर उच्चतम सीमा तय की जाती है। यह निकाय तब उत्सर्जन निकाय द्वारा स्वीकार्य उत्सर्जन पर उच्चतम सीमा तय की जाती है। सदस्य फर्म जिनके पास उत्सर्जन को कवर करने के लिए पर्याप्त भत्ते नहीं है, उन्हें या तो उत्सर्जन में कटौती करनी पड़ती है या किसी अन्य फर्म के अतिरिक्त क्रेडिट खरीदने पड़ते है। अतिरिक्त भत्ते वाले सदस्य उन्हें बेच सकते है या उन्हें भविष्य के उपयोग के लिए संभाल कर रख सकते है। कैप–एंड–ट्रेड स्कीम या तो अनिवार्य या स्वैच्छिक हो सकती है। अंतराष्ट्रीय कार्बन बाजार में भारत का हिस्सा केवल 6 प्रतिशत ही है, जबकि पड़ोसी देश चीन का हिस्सा 72 प्रतिशत है। इस हिसाब से भारत के लिए इस बाजार में अनंत संभावनाए है। आने वाले वर्षों में यह भारत जैसे देशों में धन इकट्ठा करने जैसी संभावनाओं में एक विकल्प हो सकता है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार 2017 में 52 अरब डॉलर की तुलना में दुनिया के कार्बन बाजारों और कार्बन करों का मूल्य लगभग 82 अरब डॉलर होने की संभावना है।

कार्बन बाजार में कृषि क्षेत्र से संबंधित संभावनाएँ

पेरिस जलवायु समझौते के तहत भारत 2030 तक 2005 के स्तर से 33–35% तक उत्सर्जन तीव्रता को कम करने की योजना बना रहा है। भारत की राष्ट्रीय ग्रीनहाउस इंवेट्री संस्था के अनुसार देश में 19 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस का उत्पादन कृषि व कृषि आधारित क्रिया कलापों से होता है। इस संदर्भ में कृषि क्षेत्र में कार्बन व्यापार की आर्थिक वैकल्पों को खोजने की आवश्यकता है जैसे,

- धान के खेत और जानवरों द्वारा एंटेरिक फर्मन्टेशन से मीथेन गैस के उत्सर्जन को कम करना
- मृदा में कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन को बढ़ाना
- कृषि क्षेत्र में ऊर्जा के उपयोग की दक्षता को बढ़ाना

लेकिन भारतीय कृषि की मूल समस्या है उसकी बिखरी हुई एवं छोटी–छोटी खेती की जमीन इकाइयाँ, जिन्हें इकट्ठा करके आर्थिक रूप से इस योग्य बनाया जाये की वे इन परियोजनाओ का समुचित लाभ ले सकें तथा अंतराष्ट्रीय कार्बन बाजार में मोल भाव कर सकें।

हालांकि कुछ आशा की किरण भी पटल पर दिखाई देती है, जैसे आंध्रप्रदेश के आदिलाबाद जिले का पावरगुड़ा गाँव। ये देश का पहला गाँव है जिसने वर्ल्ड बैंक के साथ कार्बन के सर्टिफिकेट खरीदने की एक संधि साइन की है। इसके अलावा चलपडी गाँव ने प्रमाणित कार्बन उत्सर्जन मे कमी जर्मनी के एक पर्यावरण समूह को बेची। गांव के आसपास के जंगलो मे प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले पोगामिया पिनाटा (करज) के बीज से निकलने वाले प्राकृतिक तेल के साथ डीजल ईंधन को बदलने से कमी आती है। चल्पदी गांव प्रतिदिन 5 से 6 लिटर पोंगामिया तेल से 10 से 12 किलोवाट हर्टज ऊर्जा उत्पन्न करता है। इस

परियोजना और उसके लाभ की विशिष्टता को पहचानते हुए के प्रबंध निदेशक श्री इगो पुहल ने उत्सर्जन में कमी की दस साल की आपूर्ति खरीदी जिसके अंतर्गत 140000 किलोग्राम पोंगामिया तेल से 900 टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में कमी आयेगी, जिसका मूल्य 4164 डालर है।

संरक्षण खेती सिद्धांत से मृदा में जैविक कार्बन तत्व में काफी वृद्धि हो सकती है। कृषि द्वारा उत्पन्न "कार्बन क्रेडिट" के माध्यम से कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन का समायोजन का लक्ष्य दोगुना प्राप्त कर सकता है, जैसे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करना और कृषि में ऊर्जा के उपयोग और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए प्रोत्साहित करना। इसके अंतर्गत कृषि क्षेत्र में कार्बन बाजार व्यवस्था बनानी होगी जहाँ कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन के मुआवजे के तौर पर "कृषि ऋण" की व्यवस्था हो। इस स्थानीय व्यवस्था से किसान को आर्थिक सुअवसर मिल सकता है और ऑफसेट क्रेडिट ट्रेड़िग के माध्यम से एकत्रित धन को स्थानीय स्तर पर विकास के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। इसके लिए जुताई प्रबंधन का मसौदा तैयार करना होगा, कृषि जुताई में सुधार के लिए आवश्यक सुविधाओं में बढोत्तरी एक मूलभूत आवश्यकता है।

वही भाषा जीवित और जागृत रह सकती है जो जनता का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर सके और हिंदी इसमें समर्थ है।

- पीर मुहम्मद मूनिस

जून की तपती दोपहर में

सी एस तिवारी

जून की तपती दोपहर में
तलाश थी, छाँव की, सुस्ताने की
दो बूँद जल की, गला तर करने की
पस्त हो गया था, दो कदम चलकर ही, क्यों न हो,
निकला था पहली बार, अपने शरीर
अपनी त्वचा को खतरे में डाल
इस कड़ी चिलचिलाती धूप में ।
न था आँखों का सुरक्षाकवच,
मेरा चश्मा और न ही सिर पर छतरी,
जो शायद जरूरी था, अत्यंत जरूरी
मुझ जैसे विलासिता पूर्ण जीवन के आदी
अभाव शब्द से अनविज्ञ, जनाने मर्द के लिए।
कुछ क्षणों का कष्ट, लगने लगा था सदियों का, अत्यंत असहनीय।
न ही मिल पाई थी छाँव
सुला सकूँ जहाँ दो घड़ी।
अचानक दूर खुले स्थान पर
नजर आया एक वृक्ष
साहस जुट आया, देखते ही उस वृक्ष को,
तय किया वह फासला, सिर्फ कुछ क्षणों में,
पड़ गया निढाल, उस छाँव दाता के आगोश में।
अचानक मेरी दृष्टि
जा टकराई, एक बदरंग सी वस्तु पर,
पड़ी थी धूप में कुछ फासले ही दूर।
गौर से अवलोकन किया, तो पाया
यह वस्तु नहीं मनुष्य है,
धूल, मिट्टी भरे बाल,
धूप में सेवलाया चेहरा
फटे बदरंग कपड़े।
पड़ा था निश्चित
चिलचिलाती धूप में।
पसीने में नहाया बदन
निद्रादेवी के आगोश में।
कुछ पलों के लिये,
जो थे उसके अपने,
मेहनत मशक्कत के बाद।
जो शायद, था एक सबक मेरे लिए
मेरे जैसे अनगिनत
इंसानो के लिये।

हिन्दी के प्रचार में अहिन्दी भाषी विद्वानों का अवदान

कमलेश कुमार एवं अशोक कुमार

यह सुविदित है कि हिन्दी का उद्‌गम दिल्ली सल्लनत की सेनायें और भारतीय हिन्दी भाषी सैनिकों, नागरिकों की बोलियों के मिश्रण से हुआ है। इसे हिन्दवी और हिन्दी नाम भी अहिन्दी भाषियों (मुसलमानों) का दिया हुआ है। मुसलमानों ने इसमें जो साहित्य रचना की है वह उल्लेखनीय है। इनमें अमीर खुसरो, रसखनान, मलिक मोहम्मद जायसी, नजीर, रहीम, रसलीन ताज, कबीर, गालिब जैसे सैकड़ों साहित्कारो की देन के लिए हिन्दी सदैव इनकी ऋणी रहेगी।

तीर्थयात्रियो, धर्मप्रचारकों और घुमक्कड़ों की भी हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अहम् भूमिका रही है। उत्तरी भारत के यात्री जगन्नाथपुरी, श्री शैलम, द्वारिका, कन्याकुमारी की यात्रा करते हैं, तो दक्षिण और पश्चिमी भारत के लोग काशी, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, बदरीनाथ, केदारनाथ और अमरनाथ, वैष्णों देवी की यात्रा करते हैं। सभी भाषा–भाषी लोग आपस में मिलते–जुलते हैं। इन सबकी एक ही सम्पर्क भाषा है, वह है हिन्दी। इस प्रकार इन्होनें इसे एक स्वयं–भू सम्पर्क भाषा बना दिया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि देश की एक भाषा ऐसी हो जो पूरे देश को जोड़े, सम्पर्क भाषा का काम करे। इसलिए राष्ट्रभाषा का नारा दिया गया।

आज हमारे देश के हर अंचल में हिन्दी सरलता से समझी जाती है। इसकी लिपि देवनागरी, वैज्ञानिक और सुबोध है। इसमें राजनैतिक, धार्मिक, साँस्कृतिक एवं शैक्षणिक सभी प्रकार के कार्य व्यवहार के संचालन की पूर्ण क्षमता है। अब हिन्दी भाषा गलियों, मौहल्लों, कस्बों, शहरों, पहाड़ों, जंगलों से होते हुये पक्षियों के सुहाने कलरव के साथ अपनी कल–कल की आवाज मिलाती यह सरिता संयुक्त राष्ट्र संघ के दरवाजे तक जा पहुँची है। इसको वहाँ तक ले जाने वाले भागीरथों का प्रयास वन्दनीय है । इन भागीरथों में भारत के कोने–कोने से हैं जो ब्रिटिश काल में मजदूरों के रूप में यहाँ से गये। अपने साथ ले गये भारत के महाकाव्य महाभारत और रामचरित मानस। वे आज अपनी भूमि से दूर भारतीय संस्कृति और हिन्दी की मशाल थामे हुये हैं। भारत में यह योगदान तब और वन्दनीय हो जाता है जब हिन्दीतर विद्वान इस यात्रा को बढ़ाता है। हिन्दी इनकी चिरऋणी है। ऐसे कुछ प्रमुख विद्वानों का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है :–

अमीर खुसरो : वास्तविक नाम अबुल हसन यमीनुद्‌नी मुहम्मद। सूफी सन्त थे। आप को हिन्दी का प्रथम कवि कहा जाता है। आपने हास्य को हिन्दी मुकरियों में लिखकर जन–जन की जुबान तक पहुँचाया। आपने पहेलियाँ, दोहे, उलटबांसियाँ और गीतों में खूब कलम चलाई।

मोहनदास करमचन्द गाँधी (महात्मा गाँधी) – मातृभाषा गुजराती। विदेश में अध्ययन किया। अँग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूदने से पूर्व पूरे भारत का भ्रमण किया। हिन्दी की एक जुटता की शक्ति को पहचाना। उद्‌घोष किया "कह दो दुनिया वालों से गाँधी अँग्रेजी नही जानता है।" आपने नियमित समाचार पत्र 'हरिजन पत्र' निकाला, जिसने स्वराज का पथ प्रशस्त किया। सेवाग्राम में रहते हुये आप पूरा पत्राचार हिन्दी में करने का आग्रह करते। आप आजीवन हिन्दी को व्यापक आधार की भाषा मानते रहे। आप की मान्यता थी कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। मेरा यह मत है कि "हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए।"

हिन्दी के पंडित फादर कामिल बुल्के – बेल्जियम में जन्मे बुल्के ने कर्मस्थली झारखण्ड की राजधानी रांची को बनाया। यहाँ के सेंट जेवियर्स कालेज में आपने वर्षो तक हिन्दी का अध्ययन किया। आपने रामकथा पर शोधकार्य किया। अपनी पी.एच.डी. थीसिस हिन्दी मे लिखी जो हिन्दी शोध के क्षेत्र में एक मानक है। आप में हिन्दी के प्रति गहरा प्रेम था। आपने रामकथा और रामचरित मानस को बौद्धिक जीवन दिया। 1968 में आपका अग्रेजी हिन्दी कोश प्रकाशित हुआ, जो अब तक प्रकाशित कोशों में सबसे अधिक प्रमाणिक माना जाता है। आपने बाइबिल का हिन्दी अनुवाद किया। कम शब्दों में हिन्दी के विद्वान बुल्के ऐसे थे जो भारतीय सँस्कृति और हिन्दी से जीवन भर प्यार करते रहे। एक विदेशी होकर नही बल्कि एक भारतीय होकर।

दयानन्द सरस्वती – मातृभाषा गुजराती। संस्कृत के विद्वान। अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी को अपनाया। चारों वेदों का भाष्य हिन्दी में लिखा। उनकी सभी रचनाएं और सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में लिखा गया। आपने काशी, मुम्बई, जोधपुर, अजमेर आदि स्थानों पर आर्य समाज की इमारत के स्तम्भ खडे किये जिनकी तोरणों पर हिन्दी की बिन्दी ही चमकती है। आज भी आपके अनुयायी देश में वेदों का प्रचार, शिक्षा आदि महत्वपूर्ण कार्य हिन्दी में कर रहे है। "भारत भारतीयों का है" उस समय कहने का साहसिक कार्य आपने किया। देश–विदेश में वेदों का हिन्दी में प्रचार किया।

केशवचन्द्र सेन – मातृभाषा बंगाली। आप स्वामी दयानन्द के घनिष्टों मे से एक थे। आपने अनुभव किया स्वामी जी के संस्कृत में वक्तव्य से जनता आनंदित नही होती है। अतः आपने स्वामी दयानन्द जी को हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित किया। आपने 'इण्डियन रिफोर्म एसोसिएशन' सँस्था बनाई इसी संस्था की ओर से 'सुलभ समाचार' नामक पत्र निकाला गया।

कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी– गुजराती भाषी। विद्वान राजनेता। मुम्बई में भारतीय विद्या भवन के संस्थापक। आपके मार्गदर्शन में मुम्बई से 'नवनीत' का प्रकाशन हुआ। मुंशी प्रेमचन्द के साथ हँस पत्रिका का सम्पादन किया। आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अगुआई की। आपने सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ मिलकर आनन्द (आणंद), गुजरात में भारतीय कृषि संस्थान की स्थापना की जो आज एक पूर्ण विश्वविद्यालय है। आपने गुजराती, हिन्दी व अग्रेजी में सौ से ज्यादा उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की। संविधान में हिन्दी को राज्यभाषा बनाने का प्रस्ताव आपने और तमिल भाषी गोपाल स्वामी अयंगर ने रखा था। उसी के फलस्वरूप 14 सितम्बर, 1949 को संविधान की धारा 343 पारित हुई, अब उसी दिन हिन्दी दिवस मनाया जाता है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस : मातृभाषा बंगाली। आपके अनुसार देश को एकसूत्र में बांधने के लिये एक भाषा होना आवश्यकता है। आपने घोषणा की "हिन्दी के विरोध का कोई आन्दोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।" आप हिन्दी में भाषण देते थे। जय हिन्द का नारा आपकी ही देन है। कई प्रयाण गीत आपने दिये।

बाल गंगाधर तिलक : आप महाराष्ट्रीय थे। 'महाराष्ट्र केसरी' में हिन्दी का पृष्ठ निकालना शुरू किया। गीता की सरल भाषा में व्याख्या की। सैकड़ों भाषण हिन्दी में दिये। आपने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान हिन्दी में "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा" नारा दिया।

शारदा चरण मित्र : बंगाली भाषी। आपने सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी को बनाने का नारा दिया। 'एक लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की। 'देवनागर' पत्र निकालना प्रारम्भ किया। भारत की साहित्यिक राजधानी कलकत्ता में हिन्दी पत्रकारिता का जन्म हुआ। हिन्दी के प्रमुख समाचार पत्र इसी अहिन्दी भाषी क्षेत्र से निकले।

चिन्तामणि घोष : बंगाली साहित्य सेवी। आपने इंडियन प्रेस की स्थापना की, जिसने हिन्दी साहित्य के और कालजयी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य किया। सैकड़ो ग्रन्थ और अनेक हिन्दी पत्रिकाएं निकालीं। यही से हिन्दी का सर्वप्रथम विश्वकोष (1913) एक बंगाली भाषी नगेन्द्रनाथ वसु ने अपना सर्वस्व लगाकर बनाया और छपवाया।

राज गोपालाचारी : दक्षिण भारतीय। हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे। आपने तमिल भाषी लोगों से अपील की यदि "आप देश की मुख्य धारा में रहकर देश से जुडे सभी निर्णयो में भाग लेना चाहते है, अलग–थलग नही पड़ना चाहते तो आवश्यक है, हिन्दी सीखें।" कन्हैया लाल मणिक लाल मुंशी और गोपाल स्वामी अयंगर द्वारा लाये गये हिन्दी को राजभाषा बनाने के प्रस्ताव के आप प्रबल समर्थक थे।

एन टी रामाराव : दक्षिण भारतीय राजनेता एवं कुशल अभिनेता। आपने फिल्मों में कृष्ण रूप को साकार कर हिन्दी की बहुत सेवा की। आपके संरक्षण में न्यूयार्क में भव्य मंदिर स्थापित हुआ, जिसमें कार्तिकेय, गणेश, शिव और पार्वती के मनमोहक विग्रह विराजमान हैं। यहाँ प्रतिदिन सैकड़ों प्रवासी एकत्रित होते हैं और आध्यात्म पर चर्चा हिन्दी में करते हैं।

सुनीति कुमार चटर्जी : बंगाली भाषी। भारतीय भाषाओं से भलीभांति परिचित थे। हिन्दीतर विद्वोनों में से हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा मानने वालों में आप प्रमुख थे। आपने अनेक उच्चस्तरीय ग्रन्थों की रचना की। सैकड़ों निबन्ध प्रकाशित किये। हिन्दुस्तान को एकीकृत रखने में हिन्दी की भूमिका में महत्वपूर्ण अध्याय जोड़े।

अनन्त गोपाल भोवडे : मराठी भाषी। सर्वप्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन की कल्पना की। हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकार एवं लघुकथाकार थे। 'नागपुर टाइम्स' के संस्थापक थे। आपके प्रयासों से 1976 में नागपुर में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ। अब तक ग्यारह विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हो चुके है। 11 वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन 18 अगस्त, 2018 मॉरीशस में हुआ। जिसमें 1422 हिन्दी प्रेमियो ने पंजीकरण करवाया, जो अपने आप में एक रिकार्ड है। इसका मुख्य भाव 'विश्व हिन्दी और भारतीय संस्कृति रखा गया था। आयोजन स्थल पर बने सभागारों के नाम भी हिन्दी के साहित्यकारों के नाम पर रखे गये। विश्व के हिन्दीतर भाषी देशों में हुये सम्मेलन, हजारों अहिन्दी भाषियों को हिन्दी से जोड़ने में सफल रहे हैं।

सुब्रह्मण्यम् भारती : तमिल भाषी। प्रयाग से हिन्दी की परीक्षा पास की। तमिल भाषियों को हिन्दी सिखाई। आपकी हिन्दी कविताएं राष्ट्र की संवेदना को झकझोरती है। आप हिन्दी, बंगाली, संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान थे। आप समाचार पत्रों के प्रकाशन और सम्पादन से जुड़े रहे। 'कर्मयोगी' तथा 'आर्या' के संपादन में श्री अरविन्द की सहायता की।

पी. जयराम : तमिल भाषी विद्वान। रिजर्व बैंक की हिन्दी शब्दावली बनाकर महत्वपूर्ण कार्य किया।

डां. नरेन्द्र कोहली : पंजाबी भाषी। अँग्रेजी भाषा के विद्वान। हिन्दी हास्य–व्यंग्य को समृद्ध किया। रामकथा पर आधारित उपन्यास (चार खण्डों में) और महाभारत आधारित उपन्यास महासमर (आठ खण्डों में) की रचना करके हिन्दी लेखन को नई दिशा दी है। आपके 'सैरन्ध्री' और 'वसुदेव' भी हिन्दी की धरोहर है।

नरसी मेहता : गुजराती भाषी। भक्ति साहित्य के श्रेष्ठतम कवि। कृष्ण भक्ति से अनुप्रेरित पदों की रचना की। गाँधी जी का प्रिय भजन ''वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाने रे'' आप का रचा हुआ है। जो आज वैष्णवों का परम प्रिय भजन है। भक्ति ज्ञान और वैराग्य के पदों के अतिरिक्त आपकी अनेक प्रसिद्ध कृतियां है। आप जनमानस को भगवद्भक्ति का उपदेश देते कहते थे ''भक्ति तथा प्राणिमात्र के साथ विशुद्ध प्रेम करने से सब को मुक्ति मिल सकती है।''

वर्तमान में नरेन्द्र परिहार 'दिवान्त मेरा', नागपुर; अमीर अली 'नव निर्माति', वर्धा; मनोहर अभय 'अग्रिमान', मुम्बई; डा0 मंजुला देसाई 'हिन्दुस्तानी जबान', मुम्बई; हीरश अडमालकर 'सामान्य जन संदेश', नागपुर; कमला जीवित राम 'प्रोत्साहन', मुम्बई; जय सिंह अलवारी 'साहित्य सरोवर', कर्नाटक; बी.एस. शांताबाई 'हिन्दी प्रचारिणी', बैंगलुरू; डा0 मनोहर भारती 'मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद पत्रिका', बैंगलुरू; गोविन्द अक्षय 'गोलकुण्डा दर्पण', हैदराबाद; डा0 अहिल्या, मिश्र 'पुष्पक', हैदराबाद; डा0 मंगल प्रसाद 'भाषा स्पंदन बैगलरू; डा0 आर कृष्णमूर्ति 'हिन्दी विजन', चेन्नई; राजेश्वर राम 'सदीनामा', कोलकत्ता; शीला डोंगरे 'सार्थक', अमरावती महाराष्ट्र; शशिकान्त काले 'विज्ञान कथा–कथन', मुम्बई आदि मासिक; द्विमासिक एवं त्रिमासिक पत्रिकाओं का सम्पादन कर हिन्दी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे हैं।

मीजोरम हिन्दी प्रचार सभा और मणीपुर हिन्दी साहित्य परिषद हिन्दी पाठकों के घर–आगँन में पहुँचकर दिलों में स्थान बना कर भारतीयता की माला को और शोभायमान बना रही है।

विश्व में सर्वाधिक हिन्दी का प्रचार करने वाली फिल्मों का बडी संख्या में निमार्ण मद्रास में होता है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी फिल्मों की प्रमुख अभिनेत्रियां गैर हिन्दी भाषी हैं। हेमामालिनी, रेखा, जयाप्रदा, वैजयंतीमाला, पदमिनी कोल्हापुरी, श्रीदेवी, मीनाक्षी, भानुप्रिया, दीपिका पादुकोण आदि दक्षिण भारतीय है। शर्मिला टेगोर, सुचिता सेन, आदि बंगाली भाषी। नूतन, तनूजा आदि मराठी भाषी। पुरानी फिल्मों में भी दुर्गा खोटे, देविका रानी, स्मिता पाटिल आदि की मातृभाशा हिन्दी नही रही है। अहिन्दी भाषियों की हिन्दी को यह देन भी उल्लेखनीय है।

विदेशी साहित्यकारों में रूस के वारान्निकोव ने संत तुलसीदास को रूस में अमर कर दिया। बंगा ने घनानन्द को यूरोप और भारत में विवेचित किया।

अत्यन्त संक्षेप में ये कुछ ऐसे नाम है जो स्पष्ट करते है कि अहिन्दी भाषियों ने हिन्दी का सम्मान और श्रीवृद्धि की है। गैर हिन्दी भाषी विद्वानों, साहित्यकारों, पाठकों ने इसके उत्थान, विकास, प्रचार–प्रसार में जितना योगदान दिया है वह प्रंशसनीय है। इससे राष्ट्रीय एकता पुष्ट हुई है।

अपरदित निम्नीकृत भूमि में कागजी निम्बू की खेती से बढ़ायें आमदनी

अविनाश चंद्र राठौर, जे जयप्रकाश, आनंद कुमार गुप्ता, हर्ष मेहता, श्रीधर पात्रा, दीपक सिंह, देवीदीन यादव एवं दर्शन कदम

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 45 प्रतिशत (146.42 मि है.) हिस्सा निम्नीकृत भूमि या डीग्रेडेड लैंड में परिवर्तित हो चुका है। मृदा के अवनीकरण (निम्नीकरण) के अनेक कारण है, जिसमें मृदा की उपजाऊ ऊपरी सतह का लगातार क्षरण होते रहना, रासायनिक खादों के प्रयोग से मृदा में लाभकारी जीवाँशों का आवश्यक स्तर से कम हो जाना, रासायनिक कारणों से मृदा का क्षारीय या अम्लीय हो जाना इत्यादि है। इसमें सर्व प्रमुख कारण मृदा का भौतिक रूप से अपरदित होना है। इसमें से अधिकांश निम्नीकृत भूमि हिमालयी राज्यों में है, हिमालयी राज्यों में युगों से मृदा अपरदन होता रहा है और यह भविष्य में होता रहेगा, क्योंकि, मृदा अपरदन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है उत्तराखण्ड राज्य में लगभग 3.83 मि. हेक्ट0 (71.10% उत्तराखण्ड राज्य की कुल भूमि का) अवनीकृत भूमि है जो मुख्यतया भूमि की ऊपरी सतह लगातार क्षरित होने के कारण बनी है। उत्तर पश्चिमी हिमालय में दून घाटी का क्षेत्रफल लगभग 0.21 मिलियन हेक्ट. में फैला हुआ है। घाटी में लगभग 0.074 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल निम्नीकृत भूमि (पथरीली भूमि) है। पथरीली भूमियों में कंकड, पत्थर, बजरी इत्यादि अधिक मात्रा (70–75%) में पाये जाने के कारण ऐसी जमीनों को पथरीली भूमि की श्रेणी में रखा गया है। इस तरह की भूमि में मिट्टी का भाग लगभग 25% से भी कम होता है, जो बालू (19–22%), सिल्ट (4–5%) एवं चिकनी मिट्टी (2–3%) से मिलकर बनी है। इसलिए इन पथरीली भूमियों की उर्वरा शक्ति एवं नमी धारण करने की क्षमता बहुत कम होने के कारण एक या दो वर्षीय फसलों को पोषित करने में सक्षम नही होती है। भारत में वर्षा आधारित खेती का कुल खाद्य उत्पादन में लगभग 65% और बागवानी उत्पादन में 80% योगदान है। हिमालय क्षेत्र में स्थित उत्तराखण्ड में भी कृषि अधिकतर वर्षा पर आधारित है। यहँ की भूमि आम तौर पर बजरी व रेत अधिक और मिट्टी कम, अल्प कार्बनिक कार्बन/मिट्टी की उर्वरता और कम जल धारण क्षमता के साथ–साथ कम गहरी मिट्टी (< 20 सेमी) कम उत्पादकता के लिए उत्तरदायी है। राष्ट्रीय कृषि सिंचाई योजना के तहत सिंचाई की सुविधा फलों और सब्जियों की खेती में बढ़ाकर उत्पादकता में सुधार लाने की आवश्यकता है, क्योंकि भारत में सिंचित क्षेत्र लगभग 35% के आस–पास है पलवार बिछाकर निम्बू में नमी संरक्षित करके धारा का संरक्षण करते हुए कृषक धनार्जन भी कर सकते हैं।

उत्तराखण्ड के किसानों द्वारा दून घाटी की तलहटी में उपोष्ण फलों के साथ–साथ समशीतोष्ण फलों की खेती व्यापक रूप से की जाती है जिसमें कृषक अन्तः फसलों के साथ या अन्तः फसल रहित फलों की खेती करते है फल प्रजातियों जैसे पहाड़ी निम्बू (लेमन), चकोतरा, नारंगी, किन्नो, आम, लीची, आड़ू, पपीता, कटहल आदि की खेती व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन कर रहे है। दून घाटी को जलवायु और पहाड़ी क्षेत्र के आधार पर कागजी नींबू (एसिड लाईम) प्रजाति के लिए अत्यधिक उपयुक्त माना जाता है। यहाँ कागजी नींबू में फल मार्च–अप्रैल से लेकर अगस्त–सितम्बर तक आते रहते है और कुछ किस्मों में तो वर्ष भर भी फूल और फल लगते रहते है। इन किस्मों को बारामासी किस्मों के रूप में माना जात है। इसमें फूल लगने के दौरान सिंचाई की आवश्यकता होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में एसिड लाइम की खेती करने से अधिक लाभप्रद हो सकती है क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों में जलभराव की समस्या नहीं होती है और एसिड लाइम जलभराव के प्रति बहुत ही संवेदनशील है पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षा आधारित फलों की खेती में सिंचित खेती से बहुत कम उपज मिलती है जो राष्ट्रीय उत्पादकता की तुलना में कम है। परंतु यदि सूक्ष्म सिंचाई विधि से पलवार के साथ पानी दिया जाये तो पानी की बचत अधिक होगी कागजी नींबू (एसिड लाइम) की फसल को लगभग 800–1000 मिली मी. पानी की आवश्यकता होती है, किन्तु सूक्ष्म सिंचाई विधि से देने में लगभग 600 मिली मी. पानी से ही कागजी नींबू (एसिड लाइम) की खेती लाभदायक रूप से की जा सकती है। इस विधि में पानी सूक्ष्म मात्रा में जड़ क्षेत्र में सीधे दिया जाता है। कागजी नींबू के पौधों के रखरखाव और अच्छा मौद्रिक लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादकों को जागरूक बनने की आवश्यकता है। अतः ऐसी भूमियों में बहुवर्षीय फलदार वृक्ष जिनकी जड़े मिट्टी में अधिक गहराई से नमी, पोषक तत्व प्राप्त कर वानस्पतिक वृद्धि कर सकते है, लगानी चाहिए।

निम्बू के आयुर्वेदिक गुण:

नींबू के औषधीय गुणों से लाभ हर मौसम में उठाया जा सकता है। यह बदलते मौसम के अनुरूप अपने गुणों का समायोजित कर मौसम के कारण होने वाली बीमारियों और दोषों से बचाता है। नींबू का मुख्य कार्य शरीर के खराब तत्वों को नष्ट कर उन्हें बाहर निकालना है। यह मुँह के स्वाद को ठीक करके भोजन के प्रति रूचि पैदा करता है। रक्त शुद्ध कर त्वचा को नई चमक देता है। नींबू को नमक में रखने से वह कई दिन तक ताजा बना रहता है। नींबू की प्रकृति क्षारीय है और इसकी तासीर ठंडी होती है। नींबू को सब्जियाँ पकाते समय नही डालें, सब्जी पकाकर उतारते समय डाले। नींबू पेट में क्षार की उत्पत्ति करता है जो अच्छे स्वास्थय के लिए आवश्यक है। नींबू में पाया जाने वाला फॉस्फोरस शरीर में नये तन्तुओं के विकास में सहायक होता है। नींबू की शिकंजी उपवास के दिनों में अधिक मात्रा में पीयें। नींबू पेट के सारे विकार पेशाब के रास्ते बाहर निकाल देता है। शरीर में खराब एसिड व विष जमा होने से व्यक्ति बीमार होता है। सुबह एक गिलास पानी में एक नींबू निचोड़कर एक चम्मच अदरक का रस डालकर नित्य पीने से शरीर शुद्ध व निरोगी रहता है।

नींबू के पौष्टिक तत्व– कैलोरी=59 मि.ग्रा., प्रोटीन=1.5 मिग्रा., कैल्शियम=90 मिग्रा., लोहा=0.3 मिग्रा., विटमिन ए=15 मिग्रा. थायोमिन=0.02 मिग्रा.,रिबोफलोविन=0. 03मिग्रा., नियासीन= 0.1मिग्रा.।

निम्बू के प्रयोग से लाभ

- पेट में गैस की समस्या होने पर एक चम्मच नींबू के रस में एक चम्मच पिसी हुई अजवाईन, आधा कप गर्म पानी में मिलाकर सुबह–शाम पीयें। पेट की गैस की रामबाण दवा तथा अचूक आयुर्वेदि इलाज।
- एक गिलास पानी में नींबू निचोड़कर चौथाई चम्मच मीठा सोडा मिलाकर रोजाना पियें। इससे पेट में गैस नही बनेगी।
- आधा गिलास गर्म पानी में आधा नींबू निचोड़कर जरा–सी पिसी हुई कालीमिर्च की फांकी सुबह –शाम लें इससे पाचन तंत्र सही रहता है
- सोठ एक चम्मच, साबुत अजवाईन 50 ग्राम, नींबू के रस में भिगोकर छाया में सुखायें। जब भी खाना खायें, खाने के बाद इसकी एक चम्मच चबायें।
- नींबू काटकर इसकी फाँको में नमक, कालीमिर्च भरकर गर्म करके चाटने से पेट में गैस की समस्या में कमी होती है।
- खाने के बाद आधा नींबू एक कप पानी में निचोड़कर पियें।
- नींबू के बीज भी बहुत काम की चीज है, नींबू के पाँच बीज, चौथाई चम्मच सौठ दोनों पीसकर आधा कप गर्म पानी में घोलकर पियें। इससे पेट के अफारे से राहत मिलती है।
- अपच (Dyspepsia) भोजन नही पचता हो, खट्टी डकारें आती हो तो पपीते पर, नींबू, काली मिर्च डालकर सात दिन तक सुबह खाने से लाभ होता है।
- भोजन के साथ मूली पर काला नमक और नींबू के रस को मिलाकर रोजाना खाने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
- नाश्ता करते समय नींबू पानी पीने से शरीर की गर्मी कम हो जाती है।
- नींबू के रस में इमली के बीजों के छिलके उतारकर पीस लें। इसका लेप करने से दाद जल्दी नष्ट होता है।
- खुजली में नींबू की फाँक रगड़ें। इससे थोड़ी सी जलन, चिरमिराहट तो जरूर होगी लेकिन खुजली ठीक हो जायेगी।
- नारियल के तेल में नींबू का रस मिलाकर मालिश करने से खुजली में लाभ होता है। यदि खुजली में दाने हो तो समान मात्रा में नींबू का रस और नारियल का तेल मिलाकर इतना गर्म करें कि रस जल जाये। फिर इसे खुजली वाली जगह रोजाना तीन बार मलें। खुजली मिट जायेगी। नींबू में फिटकरी भरकर खुजली वाली जगह पर रगड़ने से भी लाभ होता है।
- गर्म पानी में नींबू के रस को मिलाकर नहाने से खुजली मिट जाती है।
- दो करेलों का रस निकालकर इसमें आधा नींबू निचोड़े, तीन चम्मच पानी डालकर मिलाकर पियें। इससे खून साफ होकर फोड़े–फुंसी ठीक हो जाते हैं।
- अलाइयाँ (Prickly heat) गर्मी के मौसम में शरीर में अलाइयाँ, घमौरियाँ निकलती है। दिन में तीन बार नींबू पानी पीने से अलाइयाँ ठीक हो जाती है और फिर नही निकलती। अलाइयों पर नींबू का रस भी लगायें।
- जुकाम–दो चम्मच मेथी दाना एक गिलास पानी में

उबालें। उबलते हुए आधा पानी रहने पर पानी छानकर इसमें आधा नींबू निचोड़कर गर्मा–गर्म ही पिये। उबली हुई मेथी भी खायें। बुखार जुकाम, फ्लू, सर्दी, श्वास (साइनोसाइटिस) में लाभ होगा। यह पेय रोजाना दो बार जब तक ठीक नहीं हो जायें, पीते रहे।

- एक नींबू मोटे कपड़े में लपेटकर ऊपर से मिट्टी का लेप करके धीमी आग पर सेंके। सिकने के बाद नींबू निकालकर काटकर गर्म–गर्म को ही चूस लें। जुकाम जल्दी ही ठीक हो जायेगा।
- पेट दर्द, सिरदर्द तथा जुकाम के चलते चाय में दूध की जगह नींबू निचोड़कर पियें। यह चाय दिन में तीन बार पीने से आराम मिलता है।
- गला बैठ जाए, गले में सूजन हो जाए तो ताजा पानी या गर्म पानी में नींबू निचोड़कर नमक डालकर दिन में तीन बार गरारे करने से लाभ होता है।

निम्बू के अत्यधिक सेवन से होने वाले नुकसान

- नींबू में सिट्रिक एसिड होता है, यदि नींबू का उपयोग आवश्यकता से अधिक किया जाता है तो आपके दाँतो को नुकसान पहुँचाता है।
- यदि किसी को अम्ल से संबंधित एलर्जी है तो उसे नींबू का सेवन बंद कर देना चाहिए क्योंकि इसमें एसिड बहुत अधिक मात्रा में होता है, जो कि परेशानी को और अधिक बढ़ाता है। कुछ लोगों में अधिक मात्रा में नींबू पानी पीने से सीने में जलन व दर्द होता है, अतः, उन्हे सीमित मात्रा में ही नींबू पानी पीना चाहिए
- नींबू कुछ लोगों में अस्थमा के लक्षणों को बढ़ा सकता है।

कागजी निम्बू की किस्में

पूसा अभिनवः इस किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। यह प्रजाति एक क्लोनल चयन के माध्यम से विकसित की गई है इसके पौधे मध्यम आकार के, घने पत्ते और आकर्षक चमकीले पीले अंडाकार फल होते है। मार्च–अप्रैल और अगस्त–सितंबर के दौरान अधिकतम फलो की तोड़ाई के साथ–साथ वर्षभर इसमें फल होने के कारण फलों की तोड़ाई जारी रहती है। यह किस्म व्यवसायिक खेती के साथ–साथ रसोई के बगीचों के लिए भी उपयुक्त है। यह किस्म निम्बू कैंकर रोग के प्रति मध्यम सहिष्णु है। इस किस्म के फलों में लगभग 56.92% रस और 7.72% अम्लता होती है।

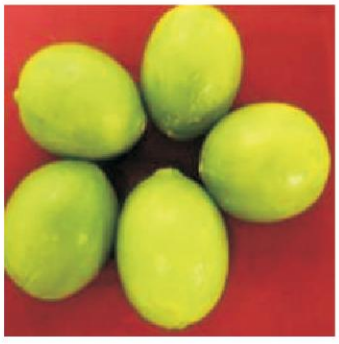

पूसा उदितः इस किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। यह प्रजाति एक क्लोनल चयन के माध्यम से विकसित की गई है। इसके पौधे मध्यम आकार के, घने पत्ते और आकर्षक चमकीले पीले गोल आकार के फल वाले होते है। इस प्रजाति में फल वर्ष भर आते रहते है, लेकिन अधिक फल उपज अगस्त–सितंबर और फरवरी–मार्च माह में आते है। यह प्रजाति व्यवसायिक खेती के साथ–साथ घरेलू बगीचे के लिए भी उपयुक्त है। यह किस्म निम्बू कैंकर रोग के प्रति मध्यम सहिष्णु है। इस किस्म के फलों का औसत आकार 38% होता है। लगभग 43.3% रस, कुल घुलनशील लवण (8.5%) और 6.9% अम्लता होती है। फलों का आकार गोल व भार 38 ग्रा. होता है

एनआरसीसी एसिड लाइम–7: इस किस्म को केंद्रीय निम्बू अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा विकसित किया गया है। इस प्रजाति के पौधे मध्यम आकार के, घने पत्ते, फल आकर्षक अंडाकार, एकल शाखाओं मे फलते है। मार्च–अप्रैल और अगस्त–सितंबर के दौरान अधिकतम फलो की तोड़ाई के साथ–साथ वर्ष भर इसमें फल होने के कारण फलों की तोड़ाई जारी रहती है। इस किस्म के फलों का भार 48 ग्रा., रस 50.5% और 70.05% अम्लता होती है। इस किस्म की पैदावार लगभग 54.0 टन प्रति हैक्ट. होती है।

एनआरसीसी एसिड लाइम–8: इस किस्म को केंद्रीय

निम्बू अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा विकसित किया गया है। इस प्रजाति के पौधे बड़े आकार के, घने पत्ते, फल आकर्षक अंडाकार और फल गुच्छों में एकल शाखाओं में फलते हैं। मार्च–अप्रैल और अगस्त–सितंबर के दौरान अधिकतम फलों की तोड़ाई के साथ–साथ वर्ष भर इसमें फल होने के कारण फलो की तोड़ाई जारी रहती है। इस किस्म के फलों का औसत भार लगभग 50 ग्राम, रस 51.53% और 7–8% अम्लता होती है। इस किस्म की पैदावार लगभग 59 टन प्रति हैक्ट. होती है।

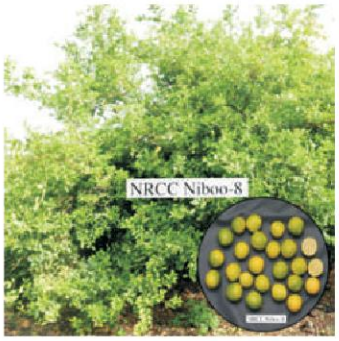

बालाजीः यह किस्म निम्बू की तेनाली प्रजाति से प्योर लाईन सेलेक्सन द्वारा चयनित की गई है। इस किस्म की उपज लगभग 57 टन प्रति हेक्टर है। यह सिट्रस केंकर, छाल फटने एवं जड़ गलन इत्यादि रोगों में प्रतिरोधी किस्म है। इस किस्म को पहाड़ी क्षेत्रों में स्थापित करने हेतु प्रयोग किये जा रहे है।

रसराजः इस संकर प्रजाति को भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान बंगलौर द्वारा विकसित किया गया है। रसराज किस्म एक अंतर–जाति (इंटर स्पेसिफिक), बहुभ्रूणीय (पॉलीम्ब्रायोनिक) संकर किस्म को कैंकर रोधी गुण नेपाली गोल निम्बू से और अन्य गुणों को कागजी निम्बू (नेपाली गोल नींबू X एसिड लाइम) के संकरण से विकसित किया गया है। इसके फल पीले, वजन औसतन 55 ग्राम, अम्लता 6%, कुल घुलनशील लवण 80 ब्रिक्स, 70% रस और 12 बीज होते है। एसिड लाइम की तुलना में इसका छिलका मोटा होता है।

फूले सरबतीः निम्बू की इस किस्म को कृषि विद्यापीठ राहुरी महाराष्ट्र ने विकसित किया है यह एक प्राकृतिक क्लोन से सीडलिंग सेलेक्शन द्वारा चयनित किस्म है। इसके फल अंडारकार होते है और उपज लगभग 180 किलो ग्रा. प्रति पेड़ (45–50 टन/हैक्ट.) तक होती है। मार्च–अप्रैल में अधिकतम फल आते हैं। इस किस्म के फलों में रस लगभग 52.52% होता है। यह सिट्रस केंकर एवं ट्रेसटीजा विषाणु के प्रति प्रतिरोधी किस्म है।

प्रमालिनीः निम्बू की इस किस्म को केंद्रीय निम्बू अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा क्लोनल सेलेक्शन विधि से विकसित किया है इसके पौधे सघन पत्तों वाले, फलन गुच्छों में, गोल फल, छिलका पतला और इसमें रस 30–55% तक होता है।

विक्रमः यह निम्बू की क्लोनल सेलेक्शन से विकसित प्रजाति है इसके पौधे घने पत्तों वाले, अधिक उपज देने वाली (फलन 5–10 फल/गुच्छा) में, गोल फल होते हैं। ऑफ सीजन में फलन होने के कारण यह किस्म किसानों के लिए अधिक लाभकारी है।

चक्रधरः यह एक बीजरहित किस्म है इसके पौधे सीधे, सघन पत्तों वाले, फल गोल, छिलका पतला और इसमें रस 60–65% तक होता है।

नींबू के लिए जलवायु एवं मृदाः

नींबू वर्गीय फलो की बागवानी उपोष्ण तथा उष्णीय दोनों प्रकार की जलवायु में अच्छी तरह से की जा सकती है। इस वर्ग के फलों की बागवानी, दोमट तथा बलुई दोमट मिट्टी, जहाँ जल निकास का उत्तम प्रबंधन हो एवं पी.एच 5.5–7.2 तक हो ऐसी मृदा खेती के लिए उपयुक्त है। अच्छी बढ़वार तथा पैदावार के लिए मृदा की गहराई 4 फीट से अधिक होनी चाहिए। सिंचाई के जल में 750 मि.ग्रा/लीटर से अधिक लवण होने पर इन किस्मों को लवण अवरोधी मूलवृत जैसे आरएलसी ग–6 पर लगाकर रोपण करना चाहिए।

पौधा–रोपण ज्यामितिः

सामान्यतया निम्बू के पौधे वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) में 4–5 मीटर की दूरी पर वर्गाकार, आयताकार या कंटूर विधि से लगाने चाहिए। इस प्रकार लगभग 400–625 पौधे प्रति हेक्टेयर समावेशित हो जाते हैं। जबकि एकोणीय या समबाहु त्रिभुजाकार विधि में कृषि

क्रियाओं को करने में कृषक को थोड़ी कठिनाई होती है। ढालू जमीनों पर निम्बू की खेती करने के लिए कंटूर विधि का प्रयोग करना चाहिए। इसमें पौधों को सामान ऊँचाई वाली कंटूर लाइनों में रोपित करते है और बाद में अर्ध चंद्राकर बेसिन बनाकर नमी का संरक्षण करके लाभ उठा सकते है।

स्थान का चयन, गड्ढ़ों की खुदाई एवं पौध रोपण विधि

फल वृक्षारोपण के लिए भूमि पर स्थित अवांछित झाड़ियों को काट देना चाहिए इसके लिए मध्यम हल्के ढ़लानों वाली, पथरीली एवं 30–35 सेमी गहराई वाली नदी भूमि का चयन करें। भूमि में दो से तीन जोताई वृक्षारोपण स्थापना के लिए आवश्यक है। वर्गाकार या त्रिकोणीय विधि में 4x4 मी. पर चिन्हित करके खुटियाँ लगाकर गड्ढों की खुदाई अप्रैल माह में कर लें। यदि भूमि ढालू है तो ढाल के विरूद्ध अर्ध चंद्राकर बेसिन/हौद बनाकर उसमें पौध रोपण का कार्य करें। इसके लिए 0.60 मी^{3} आकार के गड्ढों को खोद लें, जिससे कि मई–जून माह में सूर्य की रोशनी से गड्ढों के कीट, रोगाणु आदि समाप्त हो जाए और गड्ढ़े खोदने के एक माह बाद इन्ही गड्ढ़ोंको भरने के लिए गड्ढों में 75–80% अच्छी उपजाऊ मिट्टी और 20–25% बजरी के साथ मिश्रण बनाये और उसी मिश्रण से गड्ढों को भर दे, क्योंकि पौधे जल जमाव के प्रति संवेदनशील होने के कारण मर सकते है। दूसरा फायदा एसी मिट्टीयों में जड़ विकास के लिए पर्याप्त वायु संचार और अच्छा जड़ मंडल मिल जाता है। निम्बू के पौधों को 1.5 ग्राम/ली बाविस्टिन, 3 ग्राम/ली डाईथेन जेड 78, 2 मिलीग्राम/ली. क्लोरोपाईरीफास मिश्रण से शोधित कर लें ताकि कोई रोग से प्रभावित न रहे। साथ ही 90:75:50 ग्राम नत्रजन, फोस्फोरस, पोटाश, 25 किलों गोबर की खाद के अतिरिक्त 25 ग्राम जस्ता, लोहा बोरेक्स, मैग्नीज इत्यादि को प्रत्येक पौधे की मिट्टी में मिला देना चाहिए। निम्बू के पौधों मे खाद उर्वरक देने के लिए सारणी में उल्लेखित हिसाब से ही आपूर्ति की जा सकती है। पौधों की रोपाई जुलाई–अगस्त माह में पूरा किया जाना चाहिए। मौस्मबी के नये पौधे मुलायम होने के कारण पौधे के गिरने की संभावना अधिक होती है इसलिए लगभग 1.5 मीटर लंबी से मौस्मबी के पौधों को सहारा देना चाहिए और पौधा रोपण के समय यदि वर्षा नही हुई तो 20 लीटर पानी प्रति पौधे के हिसाब से रोपण के तुरंत बाद देना चाहिए।

पोषक तत्वों की आवश्यकता:

नींबू वर्गीय पौधों में खाद एवं उर्वरकों का विशेष ध्यान दें, विशेषकर ढालू जमीन पर। इसके लिए स्थूल एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का विवरण वर्षवार सारणी में दिया गया है, जिसके अनुरूप ही पोषक तत्वों की आपूर्ति करें।

पलवार, सूक्ष्म सिंचाई से करें नमी संरक्षण

निम्बू के पौधों में सिंचाई सूक्ष्म विधि से करने के साथ–साथ पलवार के प्रयोग से पानी की बचत के साथ पौधों का विकास अच्छा होता है। नये पौधों के लिए 20 किलो पलवार प्रति पौधे के हिसाब से बिछा देना चाहिए। सामान्यतया पानी/सिंचाई 5–6 दिन के अंतराल पर गर्मियों के मौसम में एवं सर्दियों के दौरान 15 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए। सिंचाई की आवश्यकता फलन और फल के विकास के समय महत्वपूर्ण चरणों में होती है ऐसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली स्थापित करें जो 20 लीटर पानी प्रति पौधे प्रति दिन के हिसाब से देने में सक्षम हो

विभिन्न पोषक तत्वों की वर्षवार आवश्यकता (ग्राम/पौधा/वर्ष) एवं गोबर की खाद की आवश्यकता (किग्रा/पौधा/वर्ष)

	पौधे की आयु (वर्षा में)				
पोषक तत्व	एक	दो	तीन	चार	पाँच या अधिक
नत्रजन	180	360	540	720	900
फोस्फोरस	150	300	450	600	750
पोटाश	100	200	300	400	500
जिंक सल्फेट	25	25	50	50	100
आयरन सल्फेट	25	25	50	50	100
मैगजीन सल्फट	25	25	50	50	100
गोबर की खाद	10	20	30	40	50

सके। करीब 20 किलो घास पलवार के रूप में बिछाकर गर्मियों में पानी की खपत कम कर सकते हैं। घास की पलवार के साथ सिंचाई 80 मिमी सीपीई (वाष्पीकरण) के हिसाब से पानी दिया जाना चाहिए। ध्यान दे निम्बू में कुल 15 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है जिसे 5 सेमी की गहराई तक ही देने की संस्तुति की जाती है और फूल आने के समय में पानी नही देना चाहिए अन्यथा फूल गिर जाने की प्रवाल संभावना हो जाती है।

फल उपज और आमदनी

कागजी नींबू (एसिड लाइम) के पौधे तृतीय वर्ष के बाद फल देना प्रारंभ कर देते हैं, लेकिन व्यवसायिक फलन 4–5 साल में शुरू हो जाती है। उस समय कागजी नींबू से औसत उपज 10.0–16.0 किलो प्रति पौधा की दर से प्राप्त हो सकती है, जो लगभग 6.3–10.0 टन/हेक्ट. है। इस फल को उत्पादित करने में लगभग 3.80 एम^3/ हेक्ट. पानी, लगभग 15 बार सिंचाई से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर उपलब्ध 20 किलो घास प्रति पौधे के हिसाब से पलवार भी देना अनिवार्य है। वाणिज्यिक उपज 80 किलो/पेड़ की दर से सातवे वर्ष में प्राप्त की जा सकती है। अवनत भूमि में नींबू वर्ग की प्रजातियों में फल उपज में गिरावट लगभग 14–15 वें साल से शुरू होती है और पुनः रोपण की आवश्यकता हो जाती है। कागजी नींबू को अवक्रमित भूमि पर स्थापित करने में लगभग 1,25,000 रूपये हेक्टेयर व्यय आता है। इसके साथ ही लगभग 60,000–75,000 रूपये/हेक्टेयर प्रबंधन पर खर्च भी होता है। किन्तु कागजी नींबू की फसल से लगभग 1,25,000 से 1,50,000 रूपये हेक्टेयर तक शुद्ध आय प्राप्त की जा सकती है।

अन्तः फसलें

खरीफ के समय में जमीन की उर्वरता को बनाने के लिए उर्द की @ 10–12 किगा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई करनी चाहिए। पौधों के बीच भूमि मे कर्षण क्रियाएं करते रहने से जैविक उत्पादों की रिसाइक्लिंग होती रहती है। सितम्बर माह मे उर्द की कटाई करके उसके भूसे को पुनः खेत में मिला दें जिससे खेत में पोषक तत्वों की कमी न रहे और नमी भी संरक्षित हो सके। फिर रबी की फसल के लिए खेत को जुताई करके अक्टूबर के पहले हफ्ते में तैयार किया जाता है। तोरिया @ 4 किलो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से बुवाई करनी चाहिए। कागजी नींबू (एसिड लाईम) के पौधों के प्रारंभिक तीन साल तक उर्द तथा तोरिया की खेती की जा सकती। तोरिया फसल को जनवरी के महीने में काटा जाता है और मिट्टी संवर्धन के लिए मिट्टी में वापस जोता जाता है। 4.87 क्विंटल/हेक्टेयर की औसत उपज अवक्रमित भूमि से प्राप्त होती है।

निम्बू में लगने वाले कीट और रोग एवं उनसे निदान

माहू– कोमल शाखाओं पर आने वाली पत्तियों तथा टहनियों का मुड़ना इसके प्रमुख लक्षण है।

नियंत्रण–1.0 से 1.5 मिलीलीटर इमीडाक्लोप्रिड का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फरवरी, अगस्त व अक्टूबर के महीनों में छिड़काव करें।

लीफ माइनर– नींबू की पत्तियों पर सफेद रंग की सर्प की आकृति की रेखाओं का बनना लीफ माइनर के प्रमुख लक्षण है।

नियंत्रण– प्रभावित पत्तियों को तोड़कर जला दें और 1.0 से 1.5 मिलीलीटर इमीडाक्लोप्रिड का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर या सक्सेस 0.5 से 1.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर मार्च, अप्रैल व जुलाई से अगस्त में छिड़काव करें।

कैंकर–नींबू की शाखाओं, पत्तियो व फलो पर भूरे रंग के धब्बे बनना व धीरे–धीरे शाखाओं का मरना इस रोग के लक्षण है।

नियंत्रण– प्रभावित भागों को काटकर जलायें तथा 0.1 ग्राम स्ट्रेपटोमाइसिन + 0.05 ग्राम कापर सल्फेट का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फरवरी, अक्टूबर व दिसम्बर में छिड़काव करें।

फाइटोफ्थोरा– नींबू में जड़ों व त्वचा का सड़ना, गोंद निकलना, वृक्षों का मरना इस रोग के प्रमुख लक्षण है।

नियंत्रण– तने को साफ रखें, गोंद को हटाने के बाद बोर्डो लेप लगायें। पौधों के चारो तरफ रिडोमिल एम जेड (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) या एलीर (5 ग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल डाले।

स्केब– नींबू की पत्तियों, शाखाओं व फलों पर हल्के पीले रंग के उभार लिए धब्बों का बनना स्केब के लक्षण है।

नियंत्रण– कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल जून से अगस्त के बीच 20 दिन के अंतराल पर छिड़के।

अन्य समस्याएं

फलों का फटना

नींबू में जुलाई से अगस्त में पकने वाले फलों का फटना एक गंभीर समस्या है। फटे हुए फल शीघ्र ही बीमारियों से ग्रसित हो जाते है और उपयोग के लायक नही रहते जिससे उत्पादक को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। फल फटने से रोकने के लिए उचित समय पर सिंचाई करें तथा 10 मिलीग्राम जिब्रेलिक अम्ल प्रति लीटर पानी या 40 ग्राम पोटेशियम सल्फेट प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव अप्रैल, मई तथा जून में करें। इसके अतिरिक्त अप्रैल से जून के बीच वृक्षों के नीचे पलटवार बिछाना भी फलों के फटने को रोकने में सहायक होता है।

फल व फूलों का सड़ना

नींबू में फल व फूल सड़ना एक आम समस्या है। जिससे फल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः संतुलित मात्रा में सही समय पर पोषक तत्वों (कैल्शियम, मैगनिशियम, कॉपर, जस्ता तथा बोरोन) का प्रयोग करें तथा फफूँदनाशी दवाओं का संस्तुत मात्रा में समय से प्रयोग करें।

देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

– पं रविशंकर शुक्ल

वर्तमान में सार्वजनिक जल संसाधन प्रबंधन - एक आवश्यकता

वी सी पांडे[1], पी आर भटनागर[2] एवं डी आर सेना[3]

परिचय

सार्वजनिक जल संसाधन ऐसे जल ग्रहण संरचनायें हैं, जो निचले इलाकों में बारिश के पानी को विभिन्न गहराईयों तक जमा रखती हैं। इनका एक ढलान वाला जलग्रहण क्षेत्र होता है जहां पानी मानसून अवधि के दौरान एकत्र होता है और ये उन क्षेत्रों में, जहां वर्षा कम होती है और आजीविका मुख्य रूप से वर्षा सिंचित कृषि पर आधारित है, पानी का अच्छा स्रोत हैं। ये संसाधन स्थानीय लोगों की पारंपरिक सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में समय अनुसार व वर्तमान परंपरा के अनुसार प्रबंधित किए जाते रहे हैं। जोहाद, कुंड, तालाब गाँव की परिसीमा में आने वाले परम्परागत स्त्रोत हैं। टैंक, इसी तरह, भारत में सिंचाई के पुराने स्रोतों में से एक हैं। टैंक सिंचाई के साथ जुड़े कई लाभ हैं। उदाहरण के लिए, टंका सिंचाई प्रणाली कम श्रम, किन्तु गहन पूंजी प्रधान हैं और बड़ी सिंचाई परियोजनाओं से व्यापक इनका भौगोलिक वितरण है। बाँध व सरोवर गाँव की परिसीमा या उसके बाहर स्थित स्रोत होते हैं। ये संसाधन ग्रामीण लोगों को कई तरीकों से आय और रोजगार प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूर दराज के गावों, जहाँ सरकार के अन्य स्रोत नहीं पहुँच पाये हैं, ये स्रोत सिंचाई, पशु पालन, मत्स्य पालन आदि जैसे गैर–घरेलू आजीविका से संबंधित उद्देश्यों के लिए भी उपयोग में लिए जा रहे हैं। पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत अधिकतर गाँव की पंचायत इनका प्रबंध करती हैं। राज्य सरकारों के सिंचाई व अन्य विभाग भी कुछ संसाधनों का प्रबंध करते हैं।

इन संसाधनों के अवक्रमण का विशेष कर गरीबों की आजीविका पर सीधा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। सांथ ही उनके अवक्रमण से समाज और बड़े पैमाने पर देश को गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। अतः इन संसाधनों का संरक्षण, स्थानीय आजीविका के मुद्दों और गंभीर पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए लंबे समय तक मार्ग प्रशस्त कराते हैं। बदलते वातावरण में सामूहिक संपत्ति, जल संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग और प्रबंधन में लोगों की भागीदारी की सामाजिक प्रासंगिकता है। जहाँ इक्विटी की समस्या सभी सामूहिक संपत्ति संसाधनों के लिए आम है, वहीं यह विशेष रूप से भूजल के संबंध में बहुत अधिक प्रासंगिक है। उभरते प्रौद्योगिकी चालित परिदृश्य में, जैसे कृषि क्षेत्र में नलकूप आधारित सिंचाई, सामूहिक संपत्ति जल के पारंपरिक संस्थागत व्यवस्था में चुनौतियां पूरी तरह भिन्न हैं क्योंकि ये नलकूप संख्या में अधिक और विकेन्द्रीकृत प्रबंधन होने से भूगर्भ जल प्रबंध में प्रबंध–मापदंड बनाने व उनका अमलीकरण करने में नयी चुनौतियाँ प्रतुत करते हैं। हाल के वर्षों में, कुछ स्रोतों को छोड़ कर, इन संसाधनों द्वारा वांछित उद्देश्य पूरा नहीं किया जा रहा है, जिसका कारण प्रबंधन में ढिलाई व धन की कमी रह है साथ ही दूसरी सामयिक परियोजनाओं में अधिक महत्व दिये जाने से ये परम्परागत स्रोत जीर्ण अवस्था में आ गए हैं।

वर्तमान सामाजिक विविधताओं के बावजूद ग्रामीण इलाकों में अस्तित्व के लिए बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पानी को प्रकृति के एक उपहार के रूप में माना गया है। पानी की आवश्यकता आम है और इसलिए, पानी को उपयोगकर्ताओं के सार्वभौमिक अधिकार के साथ–साथ एक साझे संसाधन के रूप में देखा जाता है। ग्रामीण भारत में जल प्रबंधन परंपरागत रूप से, छोटे ग्राम समुदायों के द्वारा की जाती रहीं हैं। कुछ जल आधारित आवश्यकताओं जैसे पीने के लिए, खाना पकाने, धोने, सफाई और स्नान सभी के लिए आम हैं। उत्पादक प्रयोजनों से संबंधित पानी का उपयोग उन लोगों के लिए परंपरागत रूप से जल संपत्ति के स्वामित्व द्वारा परिभाषित किये जाते रहे हैं। कृषि समुदाय में भूमि का स्वामित्व सिंचाई के लिए पानी उपयोग निर्धारित करता है, तो दूसरों विशेष कार्यों जैसे कुम्हार, और पशु चरवाहे भी आजीविका के लिए सामान्य जल संसाधनों का उपयोग करते हैं।

उपयोगिता

घरेलू उपयोग के लिए सामुदायिक जल आपूर्ति सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है और यह कुल पानी के उपयोग का लगभग 5% है। लगभग 7 किमी^{3} का सतह के जल और 18

[1,2]भा.कृ.अनु.प.- भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र, वासद
[3]भा.कृ.अनु.प.- भारतीय मृदा एवं जल सरंक्षण संस्थान, देहारादून

सार्वजनिक जल संसाधनों का उपयोग, गुजरात–एक परिदृश्य

किमी^{3} भूजल का उपयोग शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक जल आपूर्ति के लिए किया जा रहा हैयह उम्मीद है कि लगभग 70% शहरी जल आवश्यकता और 30% ग्रामीण सतही जल स्रोतों से पानी की आवश्यकता पूरी की जाएगी और शेष भूजल से जल संसाधनों की वर्तमान स्थिति और देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या की पानी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व इसके साथ–साथ भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याएं को देखते हुये भारत में टिकाऊ संसाधन प्रबंधन के लिए एक दीर्घकालिन रणनीति की आवश्यकता है। इस हिसाब से सार्वजनिक जल संसाधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

पारंपरिक जल संचयन प्रणाली के माध्यम से जल संग्रहण, भंडारण और प्रबंधन में सामुदायिक प्रयास लंबे समय से प्रचलित हैं। स्थानीय पर्यावरण (जल विज्ञान और स्थलाकृति समेत) और सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ मिलकर तैयार होने के अलावा, इन प्रणालियों ने भूजल को पुनर्भरण करने और संसाधन के लिए स्थानीय मांग को पूरा करने का कार्य है। इन स्रोतों का उपयोग खेती की भूमि को सिंचित करने के लिए भी किया जाता है। लगभग 23% भारतीय परिवार गांव पंचायत या गांव के समुदाय द्वारा प्रबंधित स्त्रोत जैसे टैंक, कुएं या ट्यूबवेल जैसे जल संसाधनों का या सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सुवधाओं जैसे सरकारी नहरों, नदियों और स्प्रिंग्स के नल का भूमि की सिंचाई के लिए उपयोग करते हैं। चूंकि इनमें से अधिकतर पारंपरिक जल स्रोत ग्रामीण इलाकों के जल विज्ञान और सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में हैं, इन्हें स्थानीय समुदायों द्वारा सर्वोत्तम रूप से प्रबंधित किया जाता है।

गुजरात में सामुदायिक जल संग्रहण संरचनाओं के अध्ययन में आँका गया है किकिसान द्वारा सिंचित क्षेत्र में इनका योगदान 6.2% (मध्यम किसान) से 16% (बड़ा किसान) तक था।औसतन फसल उत्पादन द्वारा जो 88 (अत्यल्प किसान) से 807 (बड़ा किसान) मानव दिन/परिवार/वर्ष रोजगार पैदा किया गया, जिसमें इन संसाधनों का योगदान 10% था। पशु उत्पादन में औसतन जल के उपयोग (49 ली./दिन/परिवार) का 56% हिस्सा इन स्रोतों द्वारा पूरा किया गया। अन्य उपयोग जैसे कपड़े

धोने, घर की सफाई आदि में इन स्रोतों का योगदान 70% से 80% रहा।अप्रत्यक्ष लाभ जैसे भूगर्भ जल पुनर्भरण इसके अतिरिक्त था, सर्वेक्षण में पाया गया कि मानसून के पश्चात गाँव तालाब के नजदीकी कुओं में जल स्तर में तालाब के आकार व क्षमता के आधार पर, 2 मी. से 20 मी. तक बढ़ोतरी हुई। इसी तरह यह बढ़ोतरी मानसून के दौरान 3 मी. से 70 मी. तक पाई गयी। जहाँ गांव के तालाब का पानी मुख्य रूप से घरेलू और पशु उपयोग के लिए होता है, खेत तालाब (सीमा तालाब) का जल पूरक सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसी तरह, सार्वजनिक रोकबांधों (checkdam) से प्रत्यक्ष भूगर्भ जल पुर्नभरण व कुछ मामलों में लिफ्ट सिंचाई के माध्यम से फसलों में जल की आपूर्ति की गयी। सर्वेक्षण किए गए मध्यम किसानों के 22% क्षेत्र इन सार्वजनिक संसाधनों से सिंचित थे। इसी तरह, बड़े किसानों के कुल क्षेत्र का 11% इन संसाधनों से सिंचित था। इस उत्पादन प्रणाली में फसल उत्पादकता, फसल को दी गई सिंचाई और इनपुट के आधार पर, औसत रु 3.3/मी^{3} पाई गई, जो रु 1.3/मी^{3} (गेहूं, ज्वार की फसलों) और रु 9.5/मी^{3} (कपास, जीरा कीफसलों) के बीच थी। इसी तरह, पशुधन उत्पादकता औसत रु. 1.6/मी^{3}थी।

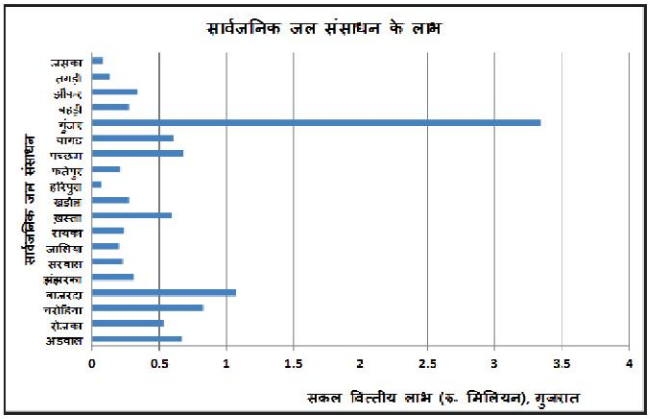

परितंत्र मूल्याँकन

गाँव व्यवस्था में अलग–अलग उपयोगों के लिए तालाब के लाभ का मूल्यांकन राज्य सरकार के नर्मदा नहर पाइपलाइन द्वारा गाँव तक पानी पहुँचाने में होने वाले खर्च पर आधारित किया गया। इन प्राकृतिक संसाधनों के अभाव में दूर दराज के गाँव तक जो अतिरिक्त खर्च होता है उसकी कमी ये सार्वजनिक जल संसाधन कर रहे हें। इस पूर्वधारणा पर इन प्राकृतिक संसाधनों से मिलने वाला लाभअच्छा ख़ासा होता है। औसत प्रति कुटुम्ब लाभ (वर्ष 2010–11 में कीमत) रु॰ 1432/परिवार/वर्ष जो कि रु॰ 1122–1559 प्रति परिवार प्रति वर्ष के बीच वितरित था। गाँव स्तर पर किए गए आँकलन में तालाब से होने वाले प्रति वर्ष सकल लाभ रु. 0.07 मिलियन से रु. 3.34 मिलियन (वर्ष 2010–11 कीमत आधारित) था।

जलवायु परिवर्तन व जल संसाधन

चूंकि ये संसाधन वर्षा पर आधारित हैं अतः जलवायु में हो रहे परिवर्तन के कारण अन्य प्राकृतिक संसाधनों के साथ–साथ ये जल संसाधन भी प्रभावित हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण जल संसाधन बढ़ते दबाव में हैं। हाल के वर्षों में, व्यापक भूमि उपयोग के परिणामस्वरूप (उदाहरण के लिए, वनों की कटाई, कृषि प्रथाओं में बदलाव और शहरीकरण) जलवायु में खास परिवर्तन आया है जिससे वैश्विक जलीय चक्र (हाइड्रोलॉजिकल साइकिल) आपदाएं, वर्षा और अपवाह में व्यापक परिवर्तनशीलता, व्यापक जलाशय तलछट और झीलों के प्रदूषण आदि की प्रकृति पर इसका प्रभाव अधिक होने लगा है। अंतर्देशीय पानी के संसाधनों में नदी व नहरों को छोड अन्य संसाधनों में टैंक और तालाबों में अधिकतम क्षेत्र (2.9 लाख हेक्टेयर) आता है तथा उसके बाद जलाशय (2.1लाख हेक्टेयर) हैं। टैंक और तालाबों का अधिकांश क्षेत्र दक्षिणी राज्यों; आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में स्थित हैं। ये राज्य पश्चिम बंगाल, राजस्थान और उत्तर प्रदेश, देश के कुल टैंक और तालाबों के क्षेत्रफल का 62 प्रतिशत हैं। जहां तक जलाशयों का संबंध है, इनका बड़ा हिस्सा आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान राज्य में है। कम वर्षा अवस्था में ये जलाशय पानी का मुख्य स्रोत हैं। सूखे या कम वर्षा की स्थिति में इन संसाधनों पर अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है और सीडबल्यूसी (2002) के आंकलन के हिसाब से देश के 14 राज्यों के 99 जिले सूखे से प्रभावित हैं, जो मुख्यतः राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों में स्थित हैं। सूखे के लिए मानव जनित कारण है। अधिक पानी की माँग, जिसके लिए बढ़ती जनसंख्या, कृषि एवं भूमि की अन्य मांगों के लिए उपयोग जिम्मेदार है, जो भूजल संग्रह और जलग्रहण क्षेत्र की (जलीय) प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं।

वर्तमान प्रबंधन व्यवस्था

सार्वजनिक जल संसाधन वैकल्पिक उद्देश्यों पर कम महत्तव देने और आबादी से दूर निर्माण के कारणों से प्रभावी ढंग से अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं।इन स्रोतों के अभियांत्रिक सर्वेक्षण में पाया गया कि कुछ

गाँवों में सार्वजनिक जल संसाधन, उचित रख–रखाव व देख–रेख के अभाव में, वर्तमान में अपनी क्षमता से आधा ही कार्य कर पा रहे थे। खरपतवार तथा मिट्टी भर जाने के कारण कुछ संसाधनों (10%) की जल भरण क्षमता बहुत कम हो गयी थी। कुछ संसाधनों (31%) में सर्वेक्षण के दौरान जल रिसाव की स्थिति पायी गयी।पंचायत के पास इन संसाधनों के रख–रखाव के लिएधन का अभाव एवं कुछ सर्वेक्षित पंचायतों में इन संसाधन के प्रबंधन के बनाई गई व्यवस्था (पानी पंचायत) कमजोर पायी गयीं।

प्रबंध सुझाव

गाँव पंचायत समिति को प्रोत्साहित करने के लिए इन संसाधनों पर अधिक आधारित गरीब तबके तथा पंचायत की महिला सदस्य, जो इन पर घरेलू कार्यों के लिए आश्रित हैं, को ज्यादातर सदस्यता के लिए शामिल किया जाए व इसलिए वैधानिक व्यवस्था की जाये। राज्य सरकार की 'गाद को निकलने' (desiltation) योजना के माध्यम से तालाब में अत्यधिक मात्र में जमा गाद (silt) को नियमित तौर पर निकलने का काम ग्राम पंचायत द्वारा किया जाये। इसके लिए ग्राम पंचायत को उचित प्रेरणा के अतिरिक्त रियायत देने की व्यवस्था की जा सकती है। इसके अतिरिक्त गावों में चल रही MGNREG परियोजना को भी 'गाद को निकलने' के लिए इससे जोड़ा जा सकता है। तालाबों में जहाँ अधिक क्षमता होने से वर्ष में ज्यादातर समय पानी उपलब्ध हो, सीमित सिंचाई या अन्य उद्योग जैसे मछली उत्पादन के उपयोग के लिए अनुमति देनी चाहिए, जिससे इन संसाधनों के उपयोग से, कर के रूप में मिलने वाले धन को, उनके रख–रखाव में लाया जा सके।

सामाजिक संसाधनों के कुशल स्थानीय प्रबंधन और न्यायसंगत उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि उनके प्रबंधन में स्थानीय भागीदारी प्रभावशाली हो। इसके लिए आवश्यक है कि ग्रामीण समाज का वह तबका, जैसे महिला सदस्य तथा गरीब किसान जो जल संसाधनों पर मूलतः आश्रित हैं, वे संसाधनों के रोजमर्रा के प्रबंध निर्णय में समलित हों। इन स्रोतो के सर्वेक्षण में यह तबका उपेक्षित नजर आया। जमीनी तौर पर यह सुनिश्चित करना आवश्यक है, वरना वांछित देख–रेख के अभाव में ये स्रोत अपना औचित्य खो देंगे जिससे इन पर आश्रित ग्रामीण समाज का एक बड़ा गरीब तबका जल आधारित अपने दैनिक जीवन के लिए आवश्यक मौलिक अधिकारों से न केवल वंचित रह जाएगा वरन जीविका अर्जन व रोज मर्रा के कार्यों से भी वंचित रहेगा। इसके अतिरिक्त उचित धन के अभाव व रख–रखाव में उपेक्षा के कारण इन स्रोतों की क्षीण होती जल ग्रहण क्षमता इन स्रोतों के उद्देश्य को ख़त्म कर रही है, और इन से मिलने वाले लाभ के अभाव में इनका प्रबंध करने का सबब भी कम होता जा रहा है। यह एक ऐसा चक्र है जिसे तोड़ना आवश्यक है अन्यथा इन पारंपरिक स्रोतों की क्रियाशील समाप्त हो जायेगी और ये मात्र इतिहास का हिस्सा बन कर रह जायेंगे।

सार्वजनिक रोकबांध व बावड़ी–गॉव में जल उपलब्धता के परिपूरक

सार्वजनिक रोकबांध–पूरक सिंचाई का स्त्रोत

दस्तक

सी एस तिवारी

मानो चुपके से
एक दस्तक दी तुमने
मेरे दिल के दरवाजे पर।
सोचने की शक्ति
मानो क्षीण हो चली
अनिर्णय की स्थिति से उबरा ही था
लो पाया
तुम तो, प्रवेश कर चुकी थी
दुबकी बैठी थी, एक कोने में
शायद अनधिकार प्रवेश की ग्लानि
या फिर
मेरी इजाजत के इंतजार में
आँखो में अपना लेने वाला
याचना का भाव
मन असमंजस की स्थिति में था।
क्या समाज इजाजत देगा ?
धर्म की दुहाई देकर
क्या तोड़ नहीं देगा बंधन प्यार का
लगता है भय, इस समाज से
इसके रीति रिवाजों से
जहाँ मनुष्य करता है प्रेम
धर्म देखकर, जात देखकर।
तुम्हें पाकर खोने की कल्पना
कितनी भयावह, कष्टप्रद
नहीं–नहीं
तुम्हें न पाने से वो
पाकर खोने का दुख
शायद कहीं ज्यादा है।
करेंगें इंतजार, सदियों तक
जब सिर्फ मनुष्य होगा, प्यार होगा
न कि धर्म, भेद व धर्मान्धता।

परिशुद्धता खेती: कृषि में क्राँति

तृषा रॉय[1], आई रश्मि[2], रमा पाल[3], दीपक सिंह[4], अभिजित सरकार[5], मधुमोहन्ती साहा[6], उदय मण्डल[7], विभा सिंघल[8] एवं इंदु रावत[9]

परिशुद्धता खेती या प्रिशिसन फार्मिंग का अर्थ है सूचना और प्रौद्योगिक आधारित प्रणाली का फसल प्रबंधन में उपयोग। परिशुद्धता खेती पूरी तरह आधुनिक तकनीकों और यांत्रीकरण पर आधारित है और इसका लाभ किसानों तक पहुँचाने के लिए उनको पूरी तरह तकनीकी सहायता उपलब्ध कराती है। भारत जैसे देश में जहाँ छोटे और सीमांत किसान (86.2 प्रतिशत हैं, वहाँ यह तकनीक शुरूआत में लागू करना चुनौतीपूर्ण साबित हो सकती है। किन्तु यदि हम परिशुद्धता खेती से होने वाले लाभ के बारे में ध्यान दें तो यह तकनीक हमारे किसानों की आय दोगुनी करने का जो प्रयास और चर्चा भारत सरकार करती है, उसको स्वयं कर सकती है।

आज के समय में भारत में कृषि मुनाफे का सौदा नही रहा । हरित क्रांति के पश्चात् हम खाद्य स्वनिर्भर हो गये है, किन्तु खाद्य और कृषि उत्पादों की गुणवत्ता घट गई है। यह अधिक रसायनों और खाद के रसायनिक विचार शून्य उपयोग के कारण हुआ है। किसान अब अपना खेत छोड़ कर, गाँव छोड़ कर, पलायन कर रहे हैं, क्योंकि उसको कृषि कार्य से कोई आर्थिक लाभ नहीं मिल पा रहा है। यह समस्या बहुत ही गंभीर है क्योंकि हमारी जनसंख्या तेज गति से बढ़ रही है और वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 1.6 बिलियन पहुँच जाएगी, जो कि चीन से भी अधिक होगी। बढ़ती हुई आबादी को भरपूर आहार देने के लिए कृषि उत्पादन में सालाना 4.2 प्रतिशत बढ़ोत्तरी की आवश्यकता है जो कि अभी मात्र 2 प्रतिशत ही रही है। पिछले दशक में इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए परिशुद्धता खेती को अपनाना भारत के लिए लाभदायक साबित हो सकता है। यह दूसरी हरित क्रांति हो सकती है।

क्या है परिशुद्धता खेती ?

परिशुद्धता खेती का मूल मंत्र है सही समय पर सही स्थान पर, खेत में सही मात्रा में कृषि का प्रयोग। परिशुद्धता खेती में पूरी कृषि प्रणाली और पौधे की वृद्धि से संबंधित हर चीज को ध्यान में रखते हैं और पूरे वातावरण का विशलेषण करके कृषि प्रणाली का प्रयोग खेत में करते हैं। आधुनिक खेती से इसका प्रधान अंतर यह है कि वर्तमान कृषि प्रणाली में खेत की, मिट्टी की या वातावरण की परिवर्तनशीलता को संज्ञान मे नहीं लिया जाता है और एक ही मात्रा में सारे कृषि साधनों का उपयोग किया जाता है। इस अभ्यास से हम या तो अधिक या कम मात्रा में कृषि साधनों का उपयोग करते हैं जो फसल पैदावार घटाता है और कृषि की लागत बढ़ा देता है। परंतु परिशुद्धता खेती में इसी परिवर्तनशीतलता को ध्यान में रखते हुए सभी कृषि साधनों का उपयोग करते हैं। इसको अपनाने से किसी भी कृषि साधन का उपयोग अधिक का कम मात्रा में नहीं होता है और साथ ही साथ खेती की लागत को कम करते हुए फसल पैदावार मे वृद्धि होती है। यह कृषि प्रणाली बुनियादी तौर पर पर्यावरण के सारे पहलू–मिट्टी, मौसम, वनस्पति, पानी सबकी मित्र है और इसी के कारण परिशुद्धता खेती भविष्य के लिए बेहतर विकल्प है।

परिशुद्धता खेती के लिए उपकरण और तकनीक

परिशुद्धता खेती इस सिद्धांत पर चलती है कि एक बड़े खेत या इलाके को एक समान जैसा मानना अनुचित है और इसी असमानता के कारण उसमें कृषि साधनों का प्रयोग अलग मात्रा में होता है। मुख्यतः निम्नवत 06 महत्वपूर्ण तकनीकें आवश्यक हैं, परिशुद्धता खेती को उपयोगी बनाने के लिए:

- सुदूर संवेदन (Remote Sensing)
- भौगौलिक सूचना प्रणाली (Geographic Information System)
- भू–मण्डलीय स्थिति तंत्र (Global Positioning System, GIS)

[1,4,7,8,9] भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून
[2] भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, कोटा
[3] भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, आगरा
[5,6] भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

- उपज निरीक्षक
- परिवर्तनीय दर तकनीकी (Variable Rate Technology)
- सेंसर प्रौद्योगिकी (Sensor Technology)

इन 6 तकनीकों का प्रयोग करके परिशुद्धता खेती को अपने खेत में किसान प्रयोग में ला सकते हैं, किन्तु उसके लिए सही सुविधा और तकनीकी जानकारी एवं सहायता किसान को प्रदान करना आवश्यक है।

परिशुद्धता खेती को Site Specific Nutrient Management "यानि स्थान विशिष्ट पोषण प्रबंधन" भी कहा जा सकता है, क्योंकि पोषक तत्व के साथ–साथ यह अन्य कृषि साधनों का जैसे पानी, कीटनाशक, मिट्टी संशोधक, (जैसे चूना, जिप्सम आदि) का प्रबंधन सही स्थान, मात्र और समय पर उपलब्ध करता है। 1980 के दशक में संचार क्रांति और सूचना प्रौद्योगिकी के साथ – साथ परिशुद्धता खेती को बढ़ावा मिला, जिसके आधार पर यह पूरी प्रणाली चलती है।

- सुदूर संवेदनः सुदूर संवेदन (Remote Sensing) में उपग्रह और विमान आधारित चित्रों का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी और फसल स्वास्थय (जैसे कि नमी, पोषक तत्व की मात्रा, फसल रोग आदि) के आँकड़े एकत्रित किये जाते है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने बहुत सारे उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे हैं, जैसे कि Resourcesat, Cartosat aur Radar Imaging Satellite (RISAT-1) जो कृषि संबंधित आँकडे एकत्रित करते हैं। परिशुद्धता खेती में इन सब आँकड़ो का प्रयोग फसल और मृदा प्रबंधन करने के लिए किया जा सकता है। विशेष रूप से बड़े किसानों के लिए यह बहुत सहायक हो सकता है जिनको अपने पूरे खेत की निगरानी करना कठिन होता है।

- फसल आदि के रोग, मिट्टी में पोषक तत्व, नमी की कमी या अधिकता, फसल की उपज आदि बहुत सी जानकारी उपग्रहों या विमान चित्रों से प्राप्त हो जाती है। आजकल ड्रोन का उपयोग भी परिशुद्धता खेती में और बारीकी से आँकड़े लेने के लिए एक सरल व महत्वपूर्ण साधन है।

- **भोगौलिक सूचना प्रणाली (GIS)** : भौगोलिक प्रणाली या GIS एक ऐसा प्लैटफार्म है जिसमें बड़े पैमाने पर हम आँकड़े एकत्रित करके रख सकते है। GIS प्लैटफार्म में सारी सूचना नक्शे के रूप में रखी जाती है। नक्शे में विभिन्न तरह की सूचनाएँ इकट्ठा करके रख सकते हैं, जो कृषि साधनों की मात्रा, समय और जगह तय करने में सहायक है। नक्शे की सूचना के अनुसार पूरे खेत के पोषक तत्वों स्थिति, ढाल, पानी की निकासी आदि के बारे में जानकारी चित्रों द्वारा किसान के पास पहुँचती है जिसका प्रयोग करके बड़े प्रभावी रूप से किसान अपने खेत की देखभाल कर सकता है।

- **भू–मण्डलीय स्थिति तंत्रः** यह परिशुद्धता खेती का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण पहलू है भू–मण्डलीय स्थिति तंत्र या GPS । इसके बिना किसी भी क्षेत्रों में परिशुद्धता खेती को है। GPS की सहायता से हम वास्तविक काल में पृथ्वी पर अपने भूगौलिक स्थान का पता कर सकते है। GPS और GIS के मेल से किसान अपने खेत की हर जगह की भौगोलिक स्थान और उसकी फसल पैदावार की क्षमता की जानकारी प्राप्त कर सकता हैजिस से वह पूरे खेत का प्रबंधन सटीकता व सरलता से कर पायेंगें।

- **उपज निरीक्षकः** उपज निरक्षक द्वारा हम एक खेत में उपज परिवर्तनशीलता देखते हैं। एक ही खेत के अंदर उपज परिवर्तनशीलता यह दर्शाती है कि मिट्टी के पोषक तत्वों की मात्रा या भौतिक, रसायनिक गुणवत्ता की भिन्नता बहुत सामान्य चीज है जो हर खेत में होती है। इस भिन्नता को मान्यता देना और ध्यान में रखकर फसल प्रबंधन करना परिशुद्धता खेती का मुख्य लक्ष्य है।

- **परिवर्तनशीलता दर तकनीकीः** परिवर्तनशीलता दर तकनीकी उन उपकरणों का उपयोग है जो स्वचालित रूप से अपने स्थान और स्थिति के अनुसार प्रयोग दरों में परिवर्तन कर सकते हैं। इस तकनीक को लागू करने के लिए GIS, GPS और प्रवर्तक की आवश्यकता होती है। GPS द्वारा भौगोलिक स्थान का निर्धारण किया जाता है, GIS नक्शा किसी भी तत्व की मात्रा या स्थिति, एक निर्दिष्ट स्थान की बताती है और प्रवर्तक विभिन्न फसल पैदावार के लिए सामग्री का प्रबंध एक निर्दिष्ट स्थान के लिए निर्धारित करती है।

- **सेंसर प्रौद्योगिकीः** विभिन्न तत्वों (P, N, P, K) की

निगरानी/जाँच के लिए सेंसर प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है। सेंसर कोई भी चीज जैसे मिट्टी में नमी, मृदा की पीएच, एन, पी, के, विद्युत चालकता, सूक्ष्म पोशक तत्व (Fe, Cu,Zn,Mn) इत्यादि, रसायनिक और भौतिक गुण की जानकारी दे सकता है। परिवर्तनीय दर तकनीकी का एक हिस्सा है सेंसर टैक्नोलॉजी, जिसका प्रयोग करके हम पूरे खेत में सही स्थान और समय पर सही साधनों का उपयोग कर सकते हैं। सेंसर प्रौद्योगिकी परिशुद्धता खेती के लिए महत्वपूर्ण है, जो परिशुद्धता खेती को सही प्रकार से कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है।

भारत में परिशुद्धता खेती को बढ़ावा देने के लिए Precision Farming Development Centres स्थापित किये गये हैं। यह सारे PFDC (चित्र) देश के विभिन्न राज्यों में कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल, केंद्रीय उपोषण बागवानी संस्थान एवं आई आई टी, खड़गपुर में खोले गए हैं। National Committee on Plasticulture Application in Horticulture के अंतर्गत ये सारे PFDC खोल गए है। PFDC के द्वारा किसानों को परिशुद्धता खेती में प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्लास्टीकल्चर एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीक को बागवानी फसलों के लिए किसान तक पहुँचाने का कार्य भी PFDC करता है (www.ncpahindia.com) । कई राज्यों जैसे तमिलनाडू में राज्य सरकार द्वारा परिशुद्धता खेती संबंधित परियोजना चलाई जा रही है, किसानों तक इसका लाभ पहुँचाने के लिए।

Precision Farming Development Centre,NCPAH,MoA,GoI

परिशुद्धता खेती के द्वारा किसान न सिर्फ अपने कृषि साधनों का सही मात्रा में सही स्थान पर, प्रयोग कर सकते हैं बल्कि जलवायु परिवर्तन के दुश्प्रभाव से बचने के लिए किसानों की सहायता कर सकते है। परिशुद्धता खेती अपनाने से किसान की उपज और आय, दोनों में वृद्धि होती है और अनुकूलतम मात्रा में सभी साधनों का प्रयोग संभव होता है। परंतु परिशुद्धता खेती किसान के खेत तक ले जाने से पहले उसका सही मूल्याँकन और सार्थकता जाँच लेनी चाहिए ताकि सही प्रकार से उसका प्रयोग हो सके और इस प्रकार की खेती को अपनाने के संबंध में किसानों का विश्वास बढ़े।

हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

ISO 9001:2015

उत्तराखण्ड के देहरादून जिले में सन् 1901 से 2002 तक मासिक तापमान की प्रवृत्ति का अध्ययन

सादिकुल इस्लाम, अक्षय धीरज, एम. मुरूगानन्दम, आनन्द कुमार गुप्ता, संगीता नैथानी शर्मा, पवन कुमार एवं सास्वत कुमार कर

उत्तराखण्ड ने विगत वर्षो में कई प्राकृतिक और जलवायु से संबंधित आपदाओं को झेला है और समय के साथ–साथ इनकी आवृती बढ़ रही है। अतः इस राज्य को जलवायु परिवर्तन से संबधित परिवर्तनों के लिए अति संवेदनशील माना जाता है। उत्तराखण्ड के 13 जिलों में से देहरादून अपने सौम्य मौसम के कारण सर्वाधिक आबादी वाला व तेजी से विकसित होने वाला जिला है। तेजी से बढ़ती आबादी, गहन मानव गतिविधियाँ, यथा प्राकृतिक, शहरीकरण, पहाड़ों का सड़कों के लिए कटान, प्राकृतिक संसाधनों पर निरन्तर दबाव बनाता है। इस क्षेत्र में जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक (जैसे तापमान, वायु वेग आदि) अप्रत्याशित रूप से बदलते रहते हैं। ये बदलाव लघु अवधि में दृष्टिगोचर नहीं हो सकते हैं, किन्तु लम्बी अवधि के पश्चात ये विनाश/आपदा में परिवर्तित हो सकते हैं। अतः जलवायु में बदलावों की समय–सीमा में पूर्व सूचना देने हेतु समय श्रृंखला विश्लेषण किया गया।

आँकड़ों का स्रोत

सन् 1901 से 2002 तक भारत के उत्तराखण्ड राज्य के देहरादून जिले में जलवायु परिवर्तन का अध्ययन करने हेतु मासिक औसत उच्चतम तापमान (T max), न्यूनतम तापमान (T min) डिग्री सन्टी ग्रेड (^{0}C) में इंडिया वाटर पोर्टल (https://www.indiawaterportal.org.) से लेकर प्रयोग में लाया गया।

क्रिया विधि

प्रवृत्ति जाँच परीक्षणः गैर मापदण्ड वाला मान–केनडाल परीक्षण (MKT) एक ही प्रकार की प्रवृत्ति के जलवायु के आँकड़ों को जाँचने के लिए बहुत लोकप्रिय है। अतः इसी का प्रयोग प्रवृत्ति की जाँच करने के लिए किया गया। MKT नल परिकल्पना (null hypothesis) की सोच के अनुसार आँकड़ों की कोई प्रवृत्ति नहीं है (H_0) और वैकल्पिक परिकल्पना (H_1) की सोच के अनुसार आँकड़ों की एक ही प्रकार की प्रवृत्ति है, (उर्ध्व या नीचे की ओर)।

उत्तराखण्ड राज्य में अध्ययन का क्षेत्र

भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून

प्रवृत्ति का आंकलन

सेन (Sen 1968) का बिना मापदण्ड की विधि का प्रयोग मासिक मौसम के परिवर्तनशील कारकों के आँकड़ों की रेखिक प्रवृत्ति के परिमाण के आँकलन के लिए किया गया। यह भली भांति ज्ञात है कि समय श्रृंखला आँकड़ों के क्रमिक सह–संबंध मे समस्या है, अतः पांरपरिक विधि के स्थान पर मान केण्डाल परीक्षण (MKT) के परिवर्तनशील सुधार दृष्टिकोण (variance correction approch) को यू व वाँग (2004) के अनुसार प्रयोग में लाया गया ।

सन् 1901 से 2002 के 102 वर्षों के मासिक अधिकतम् तापमान (T max ^{0}C) के व्याख्यात्मक आँकड़ों को निम्नवत तालिका में दर्शाया गया है।

विवरणात्मक सांख्यीकी मासिक अधिकतम तापमान (T max ^{0}C) सन् 1901 से 2002

माह	औसत ± मानक त्रुटि (SE)	मानक विचलन (SD)	अधिकतम	न्यूनतम
जनवरी	19.96±0.13	1.28	22.87	15.88
फरवरी	22.71±0.15	1.54	27.43	18.29
मार्च	28.22±0.16	1.66	32.79	23.92
अप्रैल	34.82±0.16	1.62	39.81	31.12
मई	38.64±0.15	1.52	41.88	34.25
जून	38.19±0.11	1.14	40.58	35.91
जुलाई	34.06±0.08	0.78	35.91	32.32
अगस्त	33.47±0.07	0.66	35.01	30.50
सितम्बर	33.29±0.07	0.73	35.84	31.61
अक्टूबर	31.86±0.09	0.86	33.79	29.36
नवम्बर	27.20±0.10	0.96	29.45	24.55
दिसम्बर	21.99±0.11	1.13	24.76	19.07

इसी प्रकार इस समयाविधि के मासिक न्यूनतम तापमान के व्याख्यात्मक आँकड़े नीचे दी गई तालिका में दिये गये हैं।

विवरणात्मक सांख्यीकी मासिक न्यूनतम तापमान (T min ^{0}C) सन् 1901 से 2002

माह	औसत ± मानक, त्रुटि (SE)	मानक विचलन (SD)	अधिकतम	न्यूनतम
जनवरी	5.95±0.13	1.28	9.22	2.07
फरवरी	8.50±0.14	1.41	13.08	4.11
मार्च	13.05±0.16	1.57	16.81	8.77
अप्रैल	18.73±0.15	1.56	24.13	15.03
मई	22.96±0.14	1.39	26.15	18.51
जून	25.76±0.11	1.08	28.03	23.48
जुलाई	25.40±0.07	0.75	27.97	23.80
अगस्त	24.96±0.06	0.63	26.37	22.50
सितम्बर	23.23±0.06	0.63	25.07	21.61
अक्टूबर	17.65±0.08	0.83	19.72	14.97
नवम्बर	11.30±0.09	0.94	13.83	8.97
दिसम्बर	7.01±0.11	1.07	9.65	4.08

निचे दी गयी तालिका में अधिकतम तापमान (T max °C) की प्रवृत्ति के विशलेषण के परिणाम दिये गये हैं।

मासिक औसत अधिकतम तापमान (T max °C) प्रवृत्ति जाँच, आंकलन और अपेक्षित परिवर्तन (जिला देहरादून, उत्तराखण्ड)

माह	प्रवृत्ति जाँच परीक्षण (p-value)	रेखिक प्रवृत्ति आंकलन (Sen's slope)	औसत परिवर्तन 102 वर्ष (C /102 years)
जनवरी	0.000*	0.006	0.612
फरवरी	0.000*	0.013	1.326
मार्च	0.003*	0.008	0.816
अप्रैल	0.000*	0.009	0.918
मई	0.039*	0.004	0.408
जून	0.033*	-0.006	-0.612
जुलाई	0.000*	-0.007	-0.714
अगस्त	0.000*	-0.005	-0.51
सितम्बर	0.000*	-0.005	-0.51
अक्टूबर	0.425	-0.001	-0.102
नवम्बर	0.000*	0.009	0.918
दिसम्बर	0.000*	0.008	0.816

p value < 0.05 (चिन्ह*) 5% महत्ता के स्तर पर महत्वपूर्ण पाया गया।

यह पाया गया है कि जून से सितम्बर माह में घटती रेखिक प्रवृत्ति है, और घटत का परिमाण क्रमशः –0.006, –0.007, –0.005 और –0.005 है। जबकि जनवरी से मई, नवम्बर और दिसम्बर मे बढ़ती हुई रेखिक प्रवृत्ति थी, जिसके बढ़त का परिमाण क्रमशः 0.006, 0.013, 0.008, 0.009, 0.004, 0.009 और 0.008 है।

इस तालिका के आँकाड़ों से यह भी पया गया कि अपेक्षित (औसतन) जून (0.612°C), जुलाई (0.714°C) अगस्त (0.51° C), सितम्बर (0.51° C), में कमी और जनवरी (0.612°C) फरवरी (1.326°C), मार्च (0.816°C), अप्रैल (0.918°C), मई (0.408°C), नवम्बर (0.918°C), दिसम्बर (0.816°C) में मासिक औसत अधिकतम तापमान (T max) में सन् 1901 से 2002 में बढ़त हुई।

अतः यह स्पष्ट है कि T max की मानसून के दौरान (जून–सितम्बर) की प्रवृति घटती है, अन्यथा T max की बढ़ती प्रवति है गर्मियों (मार्च में मई) व सर्दियों (नवम्बर–दिसम्बर) में, देहरादून जिले मे 102 वर्षो में (1901 से 2002) के दौरान इन परिणामों ने इंगित किया है कि यदि बढोत्तरी की प्रवृत्ति लम्बे समय तक बनी रहती है तब गर्मियों मे अधिक गर्मी व सर्दियों मे कम सर्दी होगी।

नीचे दी गई तालिका में T min की प्रवृत्ति का विश्लेषण दिया गया है। यह देखा गया कि जून से सितम्बर मे घटती हुई रेखिक प्रवृत्ति है, जिसका परिणाम क्रमशः –0.005, –0.006, –0.003 और 0.005 है, जबकि जनवरी से मई, नवम्बर और दिसम्बर में बढती रेखीय प्रवृत्ति है, जिसकी बढ़त का परिणाम क्रमशः 0.008, 0.013, 0.008, 0.009, 0.004, 0.008 और 0.010 है। सन् 1901 से 2002 के औसत मासिक T min में कमी जून (0.51°C) जुलाई (0.612°C) और अगस्त (0.306°C) और अपेक्षित वृद्धि जनवरी (0.816°C), फरवरी (1.326°C), मार्च (0.816°C), अप्रैल (0.918°C), मई (0.408°C), नवम्बर (0.816°C), और दिसम्बर (1.02°C), थी।

मासिक औसत न्यूनतम तापमान (T min °C) प्रवृत्ति जाँच, आंकलन और अपेक्षित परिवर्तन (जिला देहरादून, उत्तराखण्ड)

माह	प्रवृत्ति जाँच परीक्षण (p-value)	रेखिक आंकलन (Sen's slope)	औसत परिवर्तन 102 वर्ष (°C /102 years)
जनवरी	0.000*	0.008	0.816
फरवरी	0.000*	0.013	1.326
मार्च	0.001*	0.008	0.816
अप्रैल	0.000*	0.009	0.918
मई	0.033*	0.004	0.408
जून	0.016*	-0.005	-0.51
जुलाई	0.000*	-0.006	-0.612
अगस्त	0.000*	-0.003	-0.306
सितम्बर	0.000*	-0.005	-0.51
अक्टूबर	0.645	-0.001	-0.102
नवम्बर	0.000*	0.008	0.816
दिसम्बर	0.000*	0.010	1.02

p value < 0.05 (चिन्ह*) 5% महत्ता के स्तर पर महत्वपूर्ण पाया गया।

अतः यह स्पष्ट है कि सन् 1901 से 2002 के दौरान, 102 वर्षो मे देहरादनू जिलें में T min बरसात (जून से सितम्बर) में घटने की प्रवृत्ति है, अन्यथा T min बढती हुई प्रवृति है, गर्मियों (मार्च से मई) और सर्दियों (नवम्बर–दिसम्बर) में। तालिका के अनुसार T max के लिए भी समान परिणाम थे। जो इंगित करते हैं कि यह संम्भावित है कि भविष्य में गर्मियों मे अधिक गर्मी होगी और सर्दियां कम ठंडी होंगी।

आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिए। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए।

– *आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी*

सिलपोलिन तालाब में वर्षा जल संचयन और इसका कुशल उपयोग

प्रवीण जाखड[1], कर्मबीर[2], ज्योतिप्रवा दाश[3], पार्था प्रतिम अधिकारी[4], और अँजित कुमार[5]

पहाड़ियों मे सिंचाई की क्षमता बढाने के लिए छोटे टैकों (100 घन मीटर की क्षमता) के माध्यम से जल संसाधनों का विकसित करना आवश्यक है। अपने समृद्ध जल संसाधन भण्डार के बाबजूद, पूर्वी क्षेत्र मे अपेक्षित प्रगति नहीं हुई है। उच्च वर्षा के बावजूद, इस क्षेत्र मे शुष्क मौसम यानी नवम्बर से अप्रैल के दौरान पीने के पानी की भारी कमी होती है, सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण, दूसरी फसल खेतों मे संभव नहीं है। परिणामस्वरूप, फसल उत्पादन का आधिक्य इस क्षेत्र मे बहुत कम (120%) है। पहाड़ी क्षेत्रों में यह समस्या विशेष रूप से गंभीर है।

वर्षा जल संचयन एवं पुनः उपयोग

तालाबों मे वर्षा जल संचयन और फसलों की जीवन रक्षक सिंचाई के लिए संग्रहित पानी का उपयोग करने और अन्य आवश्कताओं के लिए भारत में प्राचीन काल से प्रचलित विधियां हैं। टैकों के डिजायन की कसौटी ऐसी होनी चाहिए कि यह न केवल रिसाव से हानि को कम करे बल्कि यह लागत प्रभावी भी हो। उदारहण के लिए, सीमेंट टैंक, टपका नुकसान की जांच करने में सक्षम है, लेकिन जल संचय के संसाधनों के संदर्भ में अधिक लागत होने के कारण आर्थिक रूप से सीमित कारक बन जाता है। दूसरी ओर अन्य प्रकार के टैकों में जल के भारी रिसाव से हानि होती है और आवश्यकता के दौरान सिंचाई के लिए पानी की आपूर्ति करने मे सक्षम नहीं होते हैं। इस प्रकार, प्रभावी जल भण्डारण के लिए, टैंक न्यूनतम टपका नुकसान और लागत प्रभावी होना चाहिए। सिंचाई के लिए वर्षा जल एकत्र करने के लिए सिलपोलिन शीट से ढके बड़े तालाबों का उपयोग किया जा सकता है। सिलपोलिन के प्रयोग से रिसाव बहुत कम होता है, अतः यह वर्षा जल संचयन के लिए आदर्श है। इसके माध्यम से बड़े पैमाने पर पानी एकत्र किया जा सकता है। यह किसानों के बीच अधिक लोकप्रिय हो रहा है। कम घनत्व वाले पॉलीथीन (एलडीपीई) या सिलपोलिन की फिल्म/चादर का सफलतापूर्वक सीमेंट टैकों की तुलना में बहुत कम लागत पर जल रिसाव के हानि को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किया जाता है। उपयोग की जाने वाली सिलपोलिन फिल्म में न्यूनतम मोटाई 200 माइक्रॉन होनी चाहिए, अन्यथा इसकी भौतिक रूप से क्षति की संभावना बन जाती है। प्लास्टिक की इस चादर को प्रभावी रखने और लम्बे समय तक भौतिक रूप से क्षति से बचने के लिए फिल्म की सुरक्षा आवश्यक है जिसे भराव (पिचिंग) के माध्यम से किया जा सकता है।

जलकुण्ड (तालाब) तकनीक

पहाड़ी क्षेत्रों के लिए कम लागत वाली, सरल, पॉलीथीन आधारित वर्षा जल संचयन संरचना विकसित की है और इसे किसानों के खेतो में प्रदर्शित किया गया है। प्रत्येक जलकुंड अपनी मूल क्षमता से लगभग डेढ गुना जलसंचय कर सकता है, जो कि रूक–रूक कर होने वाली बारिश से तालाब में जल की पुनः पूर्ति से होती है। इस जल संचय संरचना से लगभग 10% वाष्पीकरण होता है। जलकुण्डों का पानी ड्रिप सिंचाई के माध्यम से उच्च मूल्य की फसल की सिंचाई कर सकता है । इस प्रकार किसानों की आय में वृद्धि होती है। जलकुण्ड जैसी सूक्ष्म जल संचयन संरचना में निवेश करने वाले किसान जल का पुनर्चक्रमण कर उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं। और खेती के साथ–साथ मवेशी, सूकर, मुर्गी पालन भी कर सकते हैं। जलकुण्ड के पानी से किसान अधिक सब्जी उगा सकता है और शेष जल का उपयोग बतख और मछली पालन के लिए भी किया जा सकता है

जलकुंड तकनीक की विशेषताएं

स्राव और अन्तः स्त्रवण की हानि को रोकने के लिए, यूवी–प्रतिरोधी पॉलीइथाइलीन फिल्मों जैसे सिलपोलिन (200 जीएसएम या अधिक) या नायलॉन (500 जीएसएम) का उपयोग करके डग– आउट टैक को जल संचय के लिए तैयार किया जाता है। ये चादरें (फिल्में) जलरोधी, यूवी स्थिर (यूवी– स्टेबलाइज्ड), गर्मी से सीलबंद (हीट–सील्ड), बहुस्तरीय (मल्टी–लेयर्ड) और परतदार प्लास्टिक सामगियों

[1]भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय कृषिरत महिला अनुसंधान, भुवनेश्वर
[2]भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय उप्योषण बागवानी संस्थान, लखनऊ
[3,5] भा.कृ.अनु.प.– भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोरापुट
[4]भा.कृ.अनु.प.– भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर

से बनी होती हैं और इसलिए लंबे समय तक प्रयोग सुनिश्चित करती हैं आम तौर पर समलम्बाकार आकार के भंडारण टैंक का निर्माण मिट्टी की खुदाई करके और टैंक के चारों तरफ हटाई गई मिट्टी की मेढ़/बन्द बनाकर किया जाता है। इसके बाद, प्लास्टिक की चादरें उष्ण (थर्मल) जोड़ाई नामक एक प्रक्रिया द्वारा निर्मित तालाब के आयामों के अनुसार तालाब के आकार में बनाकर बिछायी जाती हैं। चादरों के किनारों को मिट्टी से दबा कर ढक देते हैं, या धातु के छल्लों से तालाब के आकार में बिछाई गई की प्लास्टिक शीट को स्थिर किया जाता है। यह पाया गया है कि सिलपोलिन या नायलॉन–लाइन वाले तालाब में पानी लम्बे समय तक उपलब्ध रहता है, और कई प्रकार के उपयोग मे लाया जा सकता है।

प्लास्टिक की चादरों के साथ तालाबों की खुदाई और फिल्म के अस्तर के दौरान विभिन्न कार्यों की लागत की गणना की गई। विस्तृत विश्लेषण से पता चला कि प्लास्टिक भंडारण की चादर वाले तालाबों की प्रति घन मीटर के भंडारण क्षमता के निर्माण की लागत केवल 150.23 रूपये थी। अन्य तरीकों जैसे ठोस संरचना वाले तालाब के निर्माण पर रु0 400–500/– प्रति घन मीटर व्यय आता है। ईंट की चिनाई से बनाये तालाब पर रु0 300–400 प्रति घन मीटर व्यय आता है, जो कि प्लास्टिक चादर वाले भण्डांरण तालाब की तुलना में बहुत अधिक है। यीवू–प्रतिरोधी प्लास्टिक शीटों वाले जलकुण्ड की लागत सिलपोलिन के जल कुण्ड की लागत से अधिक होती है।

जलकुण्ड निर्माण विधि

मानसून की शुरूआत से पहले चयनित भूमि पर 4 मीटर X3 मीटर X1 मीटर गड्ढे की खुदाई की जाती है। कुण्ड के तल और किनारों की चट्टानों, पत्थरों या अन्य कंकरों को हटाकर समतल किया जाना चाहिए अन्यथा अस्तर सामग्री प्लास्टिक की चादर को नुकसान पहुंचा सकता है। 5:1 के अनुपात में मिट्टी और गाय के गोबर के मिश्रण से पलस्तर करके कुण्ड के तल सहित भीतरी दीवारों को ठीक से चिकना किया जाना है। मिट्टी के पलस्तर के बाद, दीवारों और तल पर लगभग 3 से 5 सेंटीमीटर की मोटी गद्दी को स्थानीय और आसानी से उपलब्ध सूखी घास, पत्ती (2–3 किग्रा प्रति वर्ग मीटर) बिछा देना चाहिए ताकि अस्तर सामग्री को किसी भी तरह का नुकसान न हो। इसके बाद 250 मिमी से कम धनत्व वाले पॉलीथीन (एलडीपीई) ब्लैक एग्री–फिल्म या सिलपोलिन शीट बिछाई जाती है। एग्री–फिल्म शीट को कुण्ड मे इस तरह से बिछाया जाना चाहिए कि यह कुण्ड के तल और दीवारों को समान रूप से स्पर्श करें, और कुण्ड की लंबाई और चौड़ाई के चारों ओर लगभग 50 सेमी की चौड़ाई तक बाहर फैला हो। कुण्ड के चारो ओर 25 X 25 सेमी खाई खोदी जानी चाहिए और सिलपौलिन के 25 सेमी बाहरी किनारे को मिट्टी मे दबाया जाता है, ताकि चादर चारों ओर से कसकर बंधी हो और अपने स्थान से न हिले। इसी समय, कुंड की परिधि के साथ –साथ सतही जल नलिका (साइड चैनल), सतह के अपवाह को मोड़ने और अतिरिक्त वर्षा जल प्रवाह को बाहर निकालने में प्रभावी होती है। इस प्रकार कुण्ड में गाद का जमाव कम होता है। जलकुण्ड स्थानीय रूप से गैर–मौसमी परिस्थिति में वाष्पीकरण को कम करने के लिए नीम का तेल (10 मि.ली. प्रति वर्गमीटर) की प्रयोग भी किया जा सकता है।

जल संरक्षण हेतु सिलपोलिन तालाब की निर्माण प्रक्रिया

जलकुण्ड से लाभ

जलग्रहण क्षेत्र के ऊंचे क्षेत्रों पर जलकुण्ड का निर्माण करना चाहिए ताकि पानी को बिना किसी अतिरिक्त ऊर्जा के प्रयोग से गुरूत्वाकर्षण बल के माध्यम से नीचे खेतों में प्रयोग किया जा सके।

कम लागत में निर्माण

विभिन्न सामग्रियों और जलकुण्ड की क्षमता के तहत सिलपोलियन जल कुण्ड, आकार– 4 मी x 5 मी x1.5 मी. की कुल लागत लगभग रु.6,550/– है।

क्षमता

किसानों के पास खेती के लिए फसलों के लिए पानी की आवश्कतानुसार जलकुण्ड के आकार और क्षमता का विकल्प है। तैयारी की लागत तदनुसार परिलक्षित होती है।

हालांकि, पानी की आवश्कता को देखते हुए,जल कुण्ड का आकार प्रायः 3मी X 2मी X 1मी, 3मी X 2मी X 1.5मी, 4मी X 3मी X 1मी, 4मी X 3मी X1.5मी होता है जल संचय क्षमता प्रायः 6000 से 30,000 लीटर होती है।

संग्रहित पानी का उपयोग

आदर्श सिलपोलिन तालाब

जलकुण्ड से कृषि आय बढाने हेतु गतिविधियां

फसल उत्पादन

किसान कुल मिलाकर खेत की आय बढ़ाने के लिए जलकुण्ड की परिधि के साथ टमाटर, शिमला मिर्च, स्ट्राबेरी, फूलगोभी, गाजर, औषधीय पौधे उगाते हैं।

सूकर पालन

रबी फसल और सुकर की प्रति यूनिट पानी की आवश्यकता को मानकीकृत किया गया है, जिसमें परिकल्पित 30,000 लीटर संग्रहित पानी 250 वर्ग मीटर क्षेत्र में 200 टमाटर के पौधों और सूखे की अवधि के दौरान 200 दिनों के लिए पांच सूकर के बच्चों (पिगलेट) को अप्रैल माह से नवंम्बर माह तक सफलतापूर्वक क्रमशः उगाया और पोषित किया जा सकत है।

मुर्गी पालन

प्रति यूनिट पानी की आवश्यकता के आधार पर, संग्रहित पानी को नवंम्बर से अप्रैल अवधि के दौरान 200 दिनों के लिए 50 मुर्गियों के साथ–साथ 250 वर्ग मीटर क्षेत्र में 200 टमाटर पौधों के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

मछली और बत्तख पालन

जलकुण्ड में संग्रहित पानी का आंशिक रूप से फसल उत्पादन के लिए और आंशिक रूप से मछली–सह बत्तख पालन के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इसमें अजोला का उपयोग मछली उत्पादन के लिए फीड/(दाने) के रूप में किया जाता है। बत्तख–मछली पालन हेतु चुनी गई बत्तख किस्म (Indian Runner) थी, जिसे मध्य–पहाड़ी परिस्थितियों के जलकुण्ड में पाला जा सकता है। बत्तख के उत्सर्जन का मछली के भोजन के रूप में भी उपयोग किया जाता है। पानी का उपयोग दिसबंर से फरवरी के दौरान सब्जी उत्पादन के लिए किया गया, और मछली और बत्तख पालन के साथ सब्जी की फसल उगाई गई। पानी को आपूर्ति का प्रभावित किए बिना बरसात के बाद जलकुण्ड में मछली व बत्तख एक साथ रहे। अध्ययन से पता चला कि रबि फसलों के पानी की आवश्यकता का पूरा करने के अलावा, 30,000 लीटर पानी एक महीने की 1000 मछली के अंकुर, पांच महीने की 25 मछलियों और दो बत्तखों के पालन के लिए पर्याप्त है इस प्रकार जलकुण्ड के जल के बहुउद्देशीय उपयोग से किसानों की आय में वृद्धि होती है।

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।

– डॉ राजेन्द्र प्रसाद

असेला स्नोट्राउट - पहाड़ी क्षेत्र की एक विशिष्ट मत्स्य प्रजाति

कृपाल दत्त जोशी

हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र को प्रकृति ने अनेकों प्राकृतिक, भौगौलिक व जलवायु की जटिलताओं के साथ–साथ असीम उपहार भी दिए है। जिनमें विभिन्न प्रकार के भूमि के ऊपर व भूमि में विचरण/निवास करने वाले जीव–जंतु एवं जल जीव भी सम्मिलित है। असेला स्नोट्राउट (साइजोथोरेक्स रिचर्डसोनी) भारतीय उपमहाद्वीप स्थित हिमालय क्षेत्र की एक प्रमुख मत्सय प्रजाति है। यह मछली हिमालय क्षेत्र में उत्तर से पूर्व तक, पश्चिम में जम्मू कश्मीर से असम, सिक्किम, भूटान, नेपाल व पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान में पायी जाती है। इसे भारत के अलग क्षेत्रों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। उत्तराखण्ड में इसे असेला, असला, रसेला, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में अलवन, जिस, गुलगली तथा उत्तर पूर्व में ट्राउट कहा जाता है। यह हिमालय क्षेत्र की वेगवान नलदियों, छोटी नदियों तथा पर्वतीय क्षेत्र के सदाबहार जल स्रोत्रों में पाई जाती है। यद्यपि यह अपेक्षतया विस्तृत तापमान सहन कर लेती है, किन्तु असेला ट्राउट के लिए अनुकूल तापमान 15° से 24° से. के बीच रहता है, क्योंकि इसी तापमान पर मछली की शारीरिक वृद्धि, प्रजनन आदि क्रियाऐं सम्पन्न होती हैं। कुछ अध्ययनों के अनुसार उच्च तथा मध्य हिमालय क्षेत्र की कुछ नदियों में असेला ट्राउट की प्रतिशत उपलब्धता 23.81 से 98.03 प्रतिशत तक आँकी गई है, जबकि निम्न पर्वतीय क्षेत्र में प्रतिशत उपलब्धता कम पाई जाती है। स्वादिष्ट तथा जायकेदार मांस के लिए असेला ट्राउट पूरे हिमालय क्षेत्र में विख्यात है, तथा सिक्किम, भूटान एवं नेपाल में इसकी बहुत अधिक माँग है। कुछ क्षेत्रों में इसे विदेशी इन्द्रधनुषी ट्राउट से भी अधिक पसंद किया जाता है। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में संगठित मत्स्य तथा मत्स्य बाजारों का अभाव है फिर भी यह मछली स्थानीय नदी तथा उपनदियों से उपभोगक्ताओं तक पहुँचती है।

स्नोट्राउट का शारीरिक आकार

यह मछली आकार में लंबी तथा अर्ध बेलनाकार होती है। इसका निचला होंठ चपटा होता है जिसके छोटे–छोटे दाने सदृश संरचनाऐं (पैपिली) बनी रहती है जो एक चूषक (सकर) का रूप लिये होती है। यह विशिष्ट संरचना असेला ट्राउट की प्रमुख पहचान है। मछली का रंग स्टील सदृश भूरा होता है जो निचले भाग में हल्का हो जाता है। पेट का रंग हल्का सफेद–पीला होता है जिसमें कभी छोटे–छोटे भूरे या काले धब्बे होते है। इसका पृष्ठ पक्ष (डौरसल फिन) तथा पुच्छ पक्ष (कौडल फिन) भूरे–सफेद होते है। अन्य पक्ष भी कमोवेश पीले अथवा इसी रंग के होते है। पार्श्व रेखा (लेटरल लाइन) पूरी तथा धनुषाकार होती है। शल्क बहुत छोटे तथा दीर्घवृत्ताकार होते है तथा पिछले भाग के शल्क अपेक्षतया आकार में बड़े होते है।

आवास स्थान

असेला ट्राउट हिमालय क्षेत्र में 200 से 2000 मी. तक ऊँचाई में स्थित छोटी नदियों तथा सदाबहार नालों व पर्वतीय झीलों व जलाशयों में भी पाई जाती है। यह ग्लेशियर निर्मित नदियों तथा छोटे नालों में भी मिलती है। हिमालय क्षेत्र में स्थित उपरोक्त जल स्त्रोतों में 4° – 29° से. तापमान के बीच पायी जाती है। यह मछली नेपाल की नदियों में समुद्र तल से 1380 से 2180 मी. ऊँचाई तक पायी जाती है।

असेला स्नोट्राउट का प्राकृतिक एवं प्रतिपूरक आहार

यह मछली जलीय संसाधनों के तल पर रहती है तथा तल भोजी प्रकृति की है। यह शाकाहारी है तथा तल पर एकत्रित कार्बनिक पदार्थों चट्टानों, पत्थरों तथा नदी व जालों के किनारे स्थित ठोस वस्तुओं पर एकत्रित जैविक पदार्थ पर भोजन करती है, जिसमें मुख्यतया विभिन्न लवक होते है। किन्तु मछली के फ्राई तल पर उपलब्ध क्रस्टेशियन तथा कीटों के लार्वा का भक्षण करते है। असेला ट्राउट तालाब में पालने पर प्रतिपूरक अथवा कृत्रिम आहार भी ग्रहण करती है। लेखक द्वारा किये गये अनेक प्रयोगों के दौरान असेला ट्राउट को कृत्रिम आहार दिया गया जो इसके कुल भार का 1–5% तक था। कृत्रिम भोजन में 38% सोयाबीन आटा, 20% मछली चूर्ण तथा 2% विटामिन व खनिज चूर्ण दिया गया। इस कृत्रिम आहार में प्रोटीन की उपलब्धता 32% रखी गयी थी। प्रजनन के पश्चात् प्रस्फुटन के 84–168 घंटो के बाद ये कृत्रिम आहार ग्रहण करना प्रारंभ कर देते है।

नर व मादा मछली की पहचान

इस मछली की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें प्रौढ़ नर तथा मादा मछली में लिंग विभेद वर्ष पर्यन्त किया जा सकता है। अन्यथा अधिकतर मछलियों में नर तथा मादा की पहचान प्रजनन काल में अथवा मछलियों का विच्छेदन करने पर ही की जा सकती है। इसमें मादा मछली के पृष्ठ में कांटा (डौरसल स्पाइन) होता है तथा पुच्छ पक्ष के दोनों सिरे असमान होते है। शरीर अपेक्षाकृत खुरदरा होता है तथा अग्र भाग में छिद्रद्वार होता है। प्रजनन काल में यह लक्षण और अधिक दिखाई देते है।

शारीरिक वृद्धि दर

अन्य पर्वतीय मत्स्य प्रजातियों की तरह असेला ट्राउट की शारीरिक वृद्धि बहुत धीमी गति से होती है। लेखक द्वारा वर्ष 1997 से 2002 तक किये गये एक शोध के अनुसार प्रायोगिक मत्स्य प्रक्षेत्र चम्पावत, उत्तराखण्ड (समुद्रतल से ऊँचाई 1620मी) में इस मछली की वर्ष 1 से 5 तक वृद्धि दर क्रमशः 8.4 सेमी. (5.2 ग्राम), 12.1 सेमी (10.6 ग्राम), 156 सेमी (20 ग्राम), 18.2 सेमी (44.6 ग्राम) तथा 20.4 सेमी (72 ग्राम) पाई गई, इस प्रकार 5 वर्ष के पालन के पश्चात् यह केवल 20.4. सेमी तथा वजन 72 ग्राम तक ही बढ़ पायी जबकि नदीय वातावरण में इसकी वृद्धि 1 से 5 वर्ष तक क्रमशः 10.22 सेमी, 20.47 सेमी, 39.14 सेमी तथा 47 सेमी तक आँकी गई है।

प्रजनन विवरण

नर असेला ट्राउट में लैंगिक परिपक्वता दो वर्ष की आयु के पश्चात् तथा मादा में तीन वर्ष की उम्र के पश्चात् आती है। इस प्रजाति की मछलियों में प्रजनन वर्ष में दो बार देखा गया है। कम ऊँचाई पर (समुद्रतल से 1000 मी. से कम) स्थित नदियों एवं नाली में प्रजनन अप्रैल–मई तथा ऊँचाई वाले समुद्र तल से 1000 मी से ऊपर जल स्त्रोतों में से सितम्बर– अक्टूबर में होता है। यह मछली प्रजनन काल में नदियों के निचले भागों से पर्वतीय भागों की और प्रवासन करती है तथा अनुकूल क्षेत्र मिलने पर प्रजनन करती है। नदियों अथवा नालों के किनारे छिछले भागों में जहाँ तलीय संरचना बालू व छोटे–छोटे ककड़ों युक्त होती है वहाँ अण्डे देती है। असेला के प्रजनन के लिए 20.0–22.50° से. जलीय तापमान तथा 8.0 से 9.2 किग्रा प्रति ली. घुलित आक्सीजन उपयुक्त होते है। इस मछली में कृत्रिम प्रजनन भी कराया जा सकता है। विभिन्न अध्ययनो द्वारा देखा गया है कि मछली परिपक्व अवस्था में समस्त अण्ड़े एक साथ मुक्त करती है। असेला ट्राउट में प्रति किग्रा मछली से अनुमानतः 11650 – 17300 अण्डे प्राप्त होते है।

प्रवासन व्यवहार

असेला बर्फानी ट्राउट पर्वतीय क्षेत्र की एक प्रमुख प्रवासी प्रजाति भी है। यह मछली अनुकूल तापमान तथा उचित तथा प्रजनन योग्य क्षेत्रों की तलाश में नदियों में आवागमन करती है। यह मछली वर्ष भर अपना अधिकतम समय नदियों व नालों के मध्य तथा ऊपरी भागों में व्यतीत करती है, लेकिन शीतकाल के प्रारंभ होते ही यह ऊपरी भागों से मध्य भाग तथा फिर निचले भागों की ओर प्रवासन करती है। ज्योंही ऊपरी भागों में नवम्बर–दिसम्बर माह में जलीय तापमान लगभग 13° से. से कम होने लगता है, यह उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित नदियों व नालों से निचले भागों की ओर प्रवासन करने लगती है। नदियों अथवा नालों के मध्य अथवा निचले भागों में जलीय तापमान उच्च भागों से अधिक रहता है, जो मछली की शारीरिक क्रियाओं के लिए अधिक उपयुक्त रहता है। इस प्रकार उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में बहने वाली नदियों तथा नालों से इस प्रजाति की मछलियाँ नदियों के मध्य तथा फिर निचली घाटियों या मैदानी क्षेत्रों में आकर अक्टूबर– नवम्बर से फरवरी–मार्च तक रहती है। इस अवधि में मछली के छोटे बच्चे तथा कुछ वयस्क जो नदियों के निचले अपेक्षाकृत गर्म भागों की ओर नही आ पाते है नदियों तथा नालों के बीच गहरे तालाबों की तलहटी में आश्रय लेते है तथा शारीरिक क्रियाओं को न्यूनतम स्तर पर रखते है।

समस्त प्रवासी असेला ट्राउट नदियों व नालों के घाटियों तथा मैदानी क्षेत्रों में स्थित भाग में अपना शीतकाल व्यतीत करती है। इस अवधि में तापमान अनुकूल रहने के कारण इनकी समस्त शारीरिक जैविक क्रियाऐं सुचारू रूप से चलती रहती है, जिसके अंतर्गत शारीरिक तथा लैंगिग वृद्धि भी सम्मिलित हैं। प्रायः मार्च माह के पश्चात् नदियों के मध्य भाग में तापमान धीरे–धीरे बढ़ने लगता है, तथा अनुकूल तापमान न मिलने पर मछलियाँ मैदानी तथा घाटी क्षेत्रों में स्थित नदी–नालों से अपने पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित ऊपरी भागों की ओर प्रवासन करती हैं। इस अवधि में अनेक मछलियाँ परिपक्व अवस्था में रहती है जो मध्य भागों स्थित अनुकूल प्रजनन क्षेत्रों के मिलने पर प्रजनन क्रिया करती हैं।

ग्रीष्मकाल में प्रायः पर्वतीय क्षेत्र की छोटी नदियों एवं नालों में जल बहाव बहुत कम हो जाता है। यह स्थिति उन जल स्त्रोतों में होती है जिनके श्रोत वर्षा जल तथा शैल छिद्रों

से बहकर आने वाले जल पर निर्भर होते है। पानी की कमी के कारण इन जल स्त्रोतों में निचले भागों से आने वाली असेला प्रवेश नही करती है। वह केवल मध्य पर्वतीय क्षेत्र में बहने वाली अपेक्षाकृत पर्याप्त जलराशि युक्त नदियों व नालों में रहती है।

तत्पश्चात् वर्षा ऋतु में उच्च हिमालयी पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित समस्त नदियाँ व नाले पर्याप्त जलराशि से युक्त हो जाते है लेकिन वर्षा ऋतु के इन जल स्त्रोतो में ककंड़ पत्थरों से भरे होने तथा अत्यधिक वेगवान होने के कारण यह मछली इनमें प्रवेश नही करती है। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर अगस्त–सितम्बर में जब यह जल स्त्रोत कमोवेश स्थिर एवं अनुकूल हो जाते है, तब असेला ट्राउट इनमें प्रवेश करती है तथा उचित स्थानों पर प्रजनन करती है।

असेला स्नोट्राउट में पालन योग्य गुण

यद्यपि असेला ट्राउट मछली में वार्षिक वृद्धि दर बहुत कम पाई गई है, लेकिन फिर भी यह प्रजाति अनेक विशेषताओं से युक्त है और इसके कुछ पालन योग्य गुण निम्नवत है:–

1. अन्य पर्वतीय प्रजातियों की अपेक्षा यह मछली विस्तृत तापमान में रह सकती है। यह न्यूनतम 4.50 से. तथा अधिकतम 28.9 से. तापमान में पायी जाती है।
2. यह बहते हुए तथा कुछ कम बहाव वाले पानी में आसानी से रह सकती है।
3. जलीय प्राकृतिक आहार के अतिरिक्त–प्रतिपूरक आहार भी ग्रहण कर लेती है।
4. शाकाहारी प्रकृति की है अतः निम्न पोषी तल में रहती है।
5. इस मछली का बीज प्राकृतिक जल स्त्रोतों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है।
6. कृत्रिम प्रजनन भी सुगमता से किया जा सकता है तथा बीज उत्पादन किया जा सकता है।
7. असेला ट्राउट मछली अपने विशिष्ट स्वाद के लिए हिमालयी क्षेत्र में बहुत पसंद की जाती है।

लेखक द्वारा किये गए अनेक अध्ययनों में इस मछली की वृद्धि दर बहुत कम पाई गई है तथा प्रजाति को आखेट के अनुकूल उचित आकार ग्रहण करने में अनेक वर्ष लग जाते है। साथ ही वर्तमान समय में इनके आवास क्षेत्रों में हो रहे प्रतिकूल परिवर्तनों तथा अत्यधिक दोहन के कारण असेला ट्राउट की संख्या निरंतर कम हो रही है, जो प्रजाति के अस्तित्व के लिए बहुत बड़ खतरा है। अतः इस प्रजाति को संरक्षित करने के लिए समस्त हिमालयी क्षेत्र में सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है।

असेला स्नोट्राउट

असेला स्नोट्राउट के प्रजनक

असेला के कृत्रिम प्रजनन की प्रक्रिया

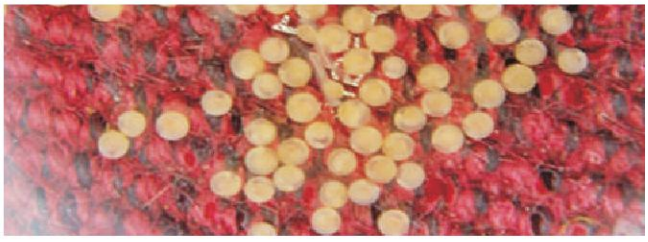

असेला स्नोट्राउट के विकासमान अंडे

उत्तराखण्ड के देहरादून जिले में पिछली शताब्दी (वर्ष1901 से 2002) में मासिक वर्षा की प्रवृत्ति का अध्ययन

सादिकुल इस्लाम, अक्षय धीरज, एम. मुरूगानन्दम, आनन्द कुमार गुप्ता, संगीता नैथानी शर्मा, पवन कुमार एवं शास्वत कुमार कर

सन् 1901 से 2002 तक मासिक आधार पर वर्ष के बारह महीनों (जनवरी से दिसम्बर) तक वर्षा के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। जलवायु के विभिन्न परिवर्तनशील कारकों में से वर्षा को चुना गया, चूंकि वर्षा जलवायु परिवर्तन के अध्ययन के लिए प्रमुख कारक है और वर्षा किसी स्थान पर जीवन और जीविका के गुण–दोष निर्धारित करती है। वर्षा के स्वरूप का कृषि एवं जल संसाधन की मांग एवं प्रबंधन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

आँकड़ों का स्त्रोत

सन् 1901 से 2002 तक भारत के उत्तराखंड राज्य के देहरादून जिले में जलवायु परिवर्तन का अध्ययन करने हेतु मासिक कुल वर्षा (मिमी में) के आँकड़ों को इंडिया वाटर पोर्टल (https://www.indiawater portal.org.) से ले कर प्रयोग में लाया गया

वर्षा की प्रवृति एवं आँकलन की क्रियाविधि (Methodology)

गैर मापदण्ड वाला मान–केनडाल परीक्षण (MKT) (Mann, 1945) एक ही प्रकार की प्रवृति के जलवायु के आँकड़ों को जाँचने के लिए बहुत लोकप्रिय है। अतः इसी का प्रयोग प्रवृति की जाँच करने के लिए किया गया। MKT नल परिकल्पना (null hypothesis) की सोच के अनुसार आँकड़ों की कोई प्रवृति नहीं है और वैकल्पिक परिकल्पना की सोच के अनुसार आँकड़ों की एक ही प्रकार की प्रवृति है (उर्ध्व या नीचे की ओर)

सेन (Sen 1968) के बिना मापदण्ड की विधि का प्रयोग मासिक वर्षा के आँकड़ों की रेखीय प्रवृति के परिमाण के विश्लेषण के लिए किया गया, बिना क्रमिक सह संबंध के। इसके लिए MKT का परिवर्तनशील संशोधन दृष्टिकोण (Variance correction approach) को यू और वाँग (2004) के अनुसार वर्षा के आँकड़ों के लिए प्रयोग में लाया गया, क्रमिक सह–संबंध के साथ।

सन् 1901 से 2002 की 102 वर्षो की मासिक कुल वर्षा की विवरणात्मक साँख्यिकी की चर्चा निम्नवत तालिका में है।

सन् 1901 से 2002 की 102 वर्षो की मासिक कुल वर्षा की विवरणात्मक साँख्यिकी

माह	औसत मानक त्रुटि (SE)	मानक विचलन (SD)	अधिकतम	न्यूनतम
जनवरी	28.49±2.12	21.41	94.61	0.30
फरवरी	25.93±1.94	19.56	82.55	0.73
मार्च	19.37±1.47	14.86	79.77	1.36
अप्रैल	13.25±0.96	9.74	47.79	0.64
मई	21.07±1.36	13.69	56.98	0.75
जून	95.38±5.69	57.51	357.16	9.44
जुलाई	265.75±10.10	102.05	599.03	66.90
अगस्त	262.47±8.80	88.92	602.83	71.96
सितम्बर	128.71±7.24	73.17	339.19	8.91
अक्टूबर	16.28±1.67	16.88	62.62	0.08
नवम्बर	6.45±0.92	9.33	41.05	0.00
दिसम्बर	10.99±1.25	12.64	52.98	0.00

मासिक वर्षा की प्रवृत्ति एवं उसके परिणाम जो कि परिवर्तनशील संशोधित MKT (tau का प्रयोग) और सेन स्लोप (Sen 's slop) (मि.मी/वर्ष) द्वारा क्रमशः प्रतिनिधित्व होते हैं, ने दर्शाया कि प्रत्येक माह (जनवरी से दिसम्बर) मे प्रवृत्ति में देहरादून जिले में बदलाव होता है (निम्नवत तालिका)

वर्षा के आँकड़ों की प्रवृत्ति के विश्लेषण के परिणामों मे देखा गया कि जनवरी और अगस्त में गिरती/कम होती हुई प्रवृत्ति है, Tau < 0(p value < 0.05) जिसका परिमाण क्रमशः 0.073 एवं –0.185, जबकि मार्च और मई में बढती हुई रेखिक प्रवृत्ति है Tau > 0 (p value < 0.05), जिसका परिमाण क्रमशः 0.005 और 0.064 है । यह भी देखा गया कि अपेक्षित कमी (औसतन) जनवरी में (-7.446 मिमी) और अगस्त में (–18.87 मिमी) थी और अपेक्षित बढोत्तरी मार्च में (6.834 मिमी) और मई में (6.528 मिमी) थी। वर्षा के परिमाण मे सन् 1901 से 2002 के दौरान (निम्नवत तालिका) रेखिक ग्राफ (अ से द) सन् 1901 से 2002 तक (102 वर्ष) देहरादून जिले में वर्षा की रेखीय प्रवृत्ति दर्शाते हैं।

मासिक वर्षा मात्रा (मिमी में) प्रवृत्ति जाँच, आंकलन और सर्व समावेशी अपेक्षित बदलाव (जिला देहरादून, उत्तराखण्ड)

माह	प्रवृत्ति जाँच परिक्षण		प्रवृत्ति आँकलन (Sen's slope)	अपेक्षित बदलाव (1901-2002), (मिमी)
	Tau (Mann-Kendall)	पी–मूल्य (p value)		
जनवरी	-0.070	0.000*	-0.073	-7.446
फरवरी	0.037	0.106	0.034	3.468
मार्च	0.104	0.000*	0.067	6.834
अप्रैल	0.014	0.517	0.005	0.51
मई	0.086	0.014*	0.064	6.528
जून	0.030	0.720	0.011	1.122
जुलाई	0.003	0.917	0.017	1.734
अगस्त	-0.050	0.025*	-0.185	-18.87
सितम्बर	-0.002	0.909	-0.002	-0.204
अक्टूबर	0.006	0.894	0.003	0.306
नवम्बर	0.022	0.333	0.000	0.000
दिसम्बर	-0.051	0.125	-0.013	-1.326

p value <0.05 (चिन्ह*) 5% महत्ता के स्तर पर महत्वपूर्ण पाया गया।

अतः यह सुस्पष्ट है कि सन् 1901 से 2002 में (102 वर्ष) देहरादून जिले मे वर्षा के मासिक वितरण में बदलाव हुआ है। यह चिन्ताजनक है कि सर्वाधिक कमी अगस्त (बरसात के मौसम) मे हुई, क्यों कि इसका प्रभाव बरसात के मौसम में की जाने वाली कृषि क्रियाओं पर पड़ेगा।

अध्ययन ने दर्शाया कि उत्तराखंड के देहरादून जिले में मौसम के तीन मापदण्डों, यथा वर्षा, अधिकतम तापमान व न्यूनतम तापमान में सन् 1901 से 2002 तक, 102 वर्षो में महत्वपूर्ण बदलाव पाया गया है। जनवरी और अगस्त की मासिक वर्षा में कमी की प्रवृति पाई गई, जबकि मार्च और मई में बढ़ने की प्रवृति पाई गई। निसंदेह बदलते जलवायु के कारकों का जनमानस के जीवन व जीविका पर प्रभाव पड़ेगा।

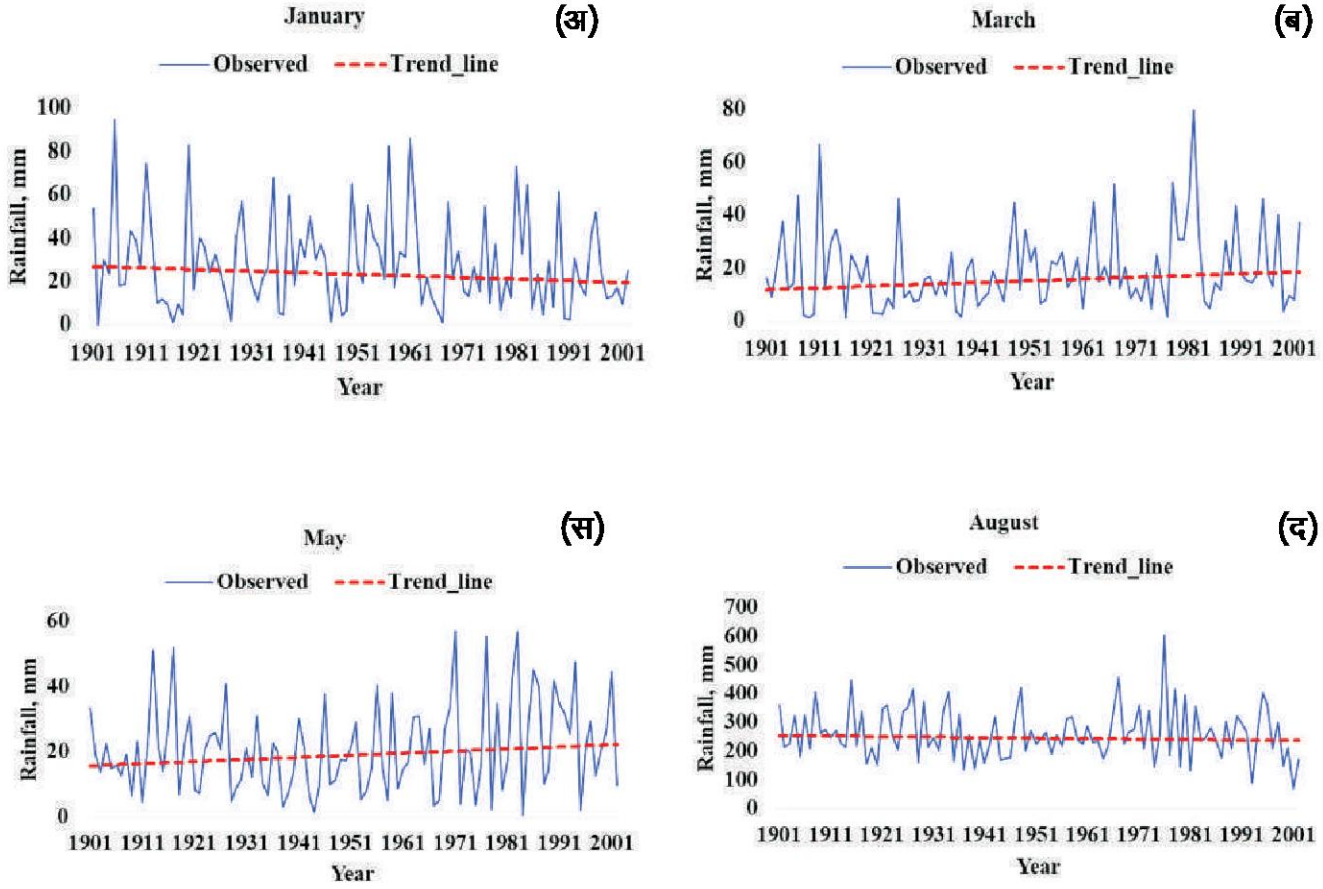

अ से द वर्षा (मिमी में) का रेखिक ग्राफ/ प्रवृत्ति माह क्रमशः जनवरी, मार्च, मई और अगस्त (सन् 1901 से 2002)

हमारी देवनागरी लिपि दुनिया की सबसे वैज्ञानिक लिपी है।

– राहुल सांकृत्यायन

कृषि में ड्रोन तकनीक का उपयोग

अक्षय धीरज[1], सादिकुल इस्लाम[1], आनंद कुमार गुप्ता[1], सपना निगम[2], सलम जयाचित्रा देवी[3], नीतीश कुमार[4] एवं पवन कुमार[5]

मानव सभ्यता की स्थिरता के लिए कृषि सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन के चलते भविष्य की खाद्यान मांगों को पूरा करना विकासशील देशों के लिए सहज नहीं है। सतत् रूप से उत्पादकता कों स्थायी रखने के लिए, उत्पादकता बढ़ाने और कृषि के लिए भूमि को अनुकूलित करने के लिए, उन्नत कृषि तकनीकों की अवधारणाओं को तलाशने और कृषि के विभिन्न घटकों को एकीकृत करने की आवश्कता है। ऐसी की एक अवधारणा कृषि में लिए डेटा (आँकड़े) एकत्र करने वाले उपकरणों में ड्रोन है, जिसे अब सटीक परिशुद्ध कृषि के लिए प्रभावी जाना जाता है। सटीक कृषि में ड्रोन के मृद्रा और फसल क्षेत्र विश्लेषण से लेकर रोपण, कीटनाशक छिड़काव, फसल बढ़वार की निगरानी, फसल की कटाई तक कई उपयोग हैं। ड्रोन का उपयोग विभिन्न इमेजिंग तकनीकों जैसे हाइपरस्पेक्ट्रल, मल्टीस्पेक्ट्रल, थर्मल आदि के साथ किया जा सकता है, जो किसानों को फसल स्वास्थ्य, कवक (फंगल) संक्रमण, विकास की अड़चन आदि के बारे में समय से और स्थान–विशिष्ट जानकारी प्रदान कर सकता है।

ड्रोन क्षेत्र में जल की स्थिति– अधिकता/कमी की पहचान कर ऐसे क्षेत्रों में बेहतर तकनीकों से जल प्रबंधन उपाय क्रियान्वयन करनें मे सहायक है। सटीक कृषि किसानों को सटीक/विश्वसनीय जानकारी प्रदान करती है, जो उन्हें सूचित संस्तुतियों के संबंध में निर्णय लेने और अपने संसाधनों का अधिक कुशलता से उपयोग करने में सक्षम बनाती हैं। कृषि में ड्रोन का उपयोग फसल उत्पादन, प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली, आपदा/जोखिम की तीव्रता व आवृति, वानिकी, मत्स्यपालन, साथ ही साथ वन्यजीव संरक्षण मे तेज गति से हो रहा है।

फसल उत्पादन

सटीक खेती सेंसर डेटा और इमेजिंग को रीयल–टाइम डेटा विश्लेषण के साथ जोड़ती है, जिसके द्वारा खेत में स्थानिक परिवर्तनशीलता का मानचित्र बनाया जाता है और तदनुसार कृषि क्रियाओं को कार्यान्वित कर कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। सटीक खेती में ड्रोन मिट्टी का स्वास्थ्य जाँच सकता है। इसके साथ ही ड्रोन फसल की निगरानी, सिंचाई कार्यक्रम की योजना बनाने में सहायता, उर्वरक डालने, उपज डेटा का अनुमान लगाने में और मौसम विश्लेषण के लिए मूल्यवान डेटा प्रदान करने मे सहायक है। पहले खेत में फसलों पर जगह–जगह स्पॉट छिड़काव दूभर हुआ करता था। ऐसे, में पूरे खेत में छिड़काव किया जाता था। इस प्रकार समय और संसाधनों की बड़ी बर्बादी होती थी। रसायनों, कीटनाशकों के अधिक मात्रा में प्रयोग से न केवल कृषि की लागत बढ़ती थी अपितु इनसे पर्यावरण को भी अधिक हानि होती थी। ड्रोन द्वारा किए गए स्पॉट छिड़काव के साथ कम संसाधनों और कम पर्यावरण हानि के साथ यह कार्य कम समय मे पूरा किया जा सकता है।

आपदा जोखिम में कमी

ड्रोन द्वारा एकत्रित डाटा द्वारा कृषि जोखिमों जैसे कि भूस्खलन और कटाव बाढ़ के पानी का विस्तार आदि से संबधित जानकारी मिलती है। इस जानकारी से कृषि समुदाय को इन जोखिमों को समझने व इनके द्वारा होने वाली हानि के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

वानिकी

ड्रोन द्वारा ली गयी तस्वीरों का उपयोग बड़े और उच्च रिजॉल्यूशन ऑर्थोमैप्स के साथ किया जाता है । इन ऑर्थोमैप्स को फिर जीआईएस सिस्टम में एकीकृत किया जा

[1]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून
[2]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय शूकर अनुसंधान केन्द्र, गुवाहाटी
[4]भा.कृ.अनु.प. – केन्द्रीय कृषिरत महिला संस्थान, भुवनेश्वर
[5]भा.कृ.अनु.प. – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

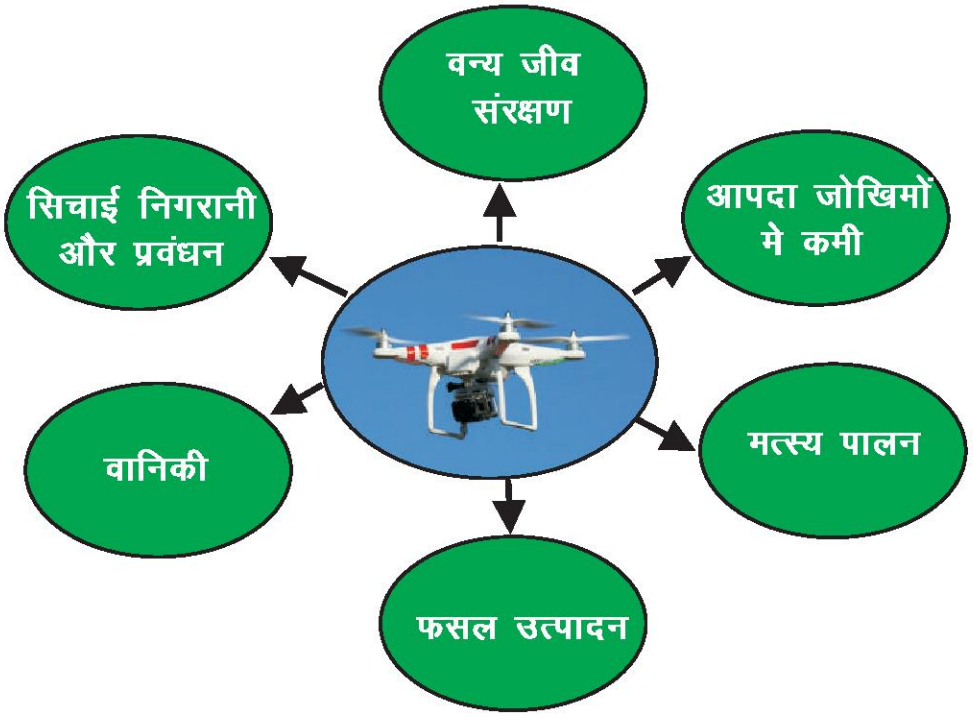

सकता है और विश्लेषण, योजना और प्रबंधन के लिए उपयोग में लाया जाता है। ड्रोन तकनीक के माध्यम से वन प्रबंधन को बेहतर बनाया जा सकता है। अतिक्रमण, गैरकानूनी गतिविधियों सहित परिचालन योजनाओं में भी ड्रोन तकनीक का प्रयोग किया जाता है। ड्रोन विभिन्न वन मेट्रिक्स जैसे कि कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन, वृक्ष कनोपी विश्लेषण, संरक्षण सुविधाएं, देसी प्रजातियों की निगरानी, जैव विविधिता और पारिस्थितिक परिदृश्य सुविधाओं की निगरानी भी करता है।

मत्स्यपालन

मत्स्य क्षेत्र में कई राष्ट्रों की सरकारें अवैध मछली पकड़ने का पता लगाने के लिए ड्रोन का उपयोग कर रही हैं। गूगल ने एक 'टूल ग्लोबल फिशिंग वॉच' लॉन्च करके अवैध मछली पकड़ने को रोकने के प्रयास में शामिल हो गया है। इसके द्वारा अवैध मछली पकड़ने वाली नौकाओं की गतिविधियों को ट्रैक किया जा सकता है। ग्लोबल फिशिंग वॉच उपयोगकर्ताओं को विश्व स्तर पर मछली पकड़ने की गतिविधि की निगरानी करने में सक्षम बनाता है और नौका /जलपोत ट्रैक, समुद्री संरक्षित क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र आदि का पता इस टूल से लगाया जा सकता है।

वन्यजीव संरक्षण

उच्च विश्लेषक क्षमता वाले थर्मल कैमरों से लैस ड्रोन का उपयोग ट्रैक, निरीक्षण और पशुओं की निगरानी दूर से करने के लिए किया जाता है। काजीरंगा राष्ट्रीय पार्क में, असम सरकार ड्रोन का उपयोग निगरानी, अनधिकृत बस्तियो की पहचान करने तथा शिकारियों को रोकने के लिए कर रही है। थ़र्मल कैमरों से लैस ड्रोन हीट सिग्नेचर से शिकारियों की भी पहचान कर सकते हैं।

सिंचाई निगरानी और प्रबंधन

ड्रोन जो थर्मल कैमरो से लेस हैं, सिंचाई मुद्दों, बहुत कम या अत्यधिक नमी प्राप्त करने वाले क्षेत्रों को चिन्हित करते हैं। पानी और सिंचाई के मुद्दे न केवल मंहगे हैं बल्कि पानी की अधिकता या कमी फसल की पैदावार को भी बर्वादी की हद तक प्रभावित करती है। ड्रोन सर्वेक्षण के साथ जल की स्थिति को गंभीर होने से पहले ही ध्यान में रख कर बचाव के उपाय अमल में लाये जा सकते हैं।

ड्रोन तकनीकी के लाभ

उन्नत उत्पादन

ड्रोन के उपयोग से किसान व्यापक सिंचाई योजना, फसल की बुआई से कटाई तक की व फसल स्वास्थ्य की निगरानी, मिट्टी के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी और पर्यावरण परिवर्तन के लिए अनुकूलन के माध्यम से उत्पाकता में सुधार कर सकते हैं।

प्रभावी और अनुकूल तकनीक

ड्रोन के उपयोग से किसानों को उनकी फसलों के

बारे में नियमित अपडेट मिलता है और खेती की तकनीकों का चयन करने व सुदृढ़ करने में मदद मिलती है। परिस्थिति/ मौसम की स्थिति के अनुकूल तकनीक के प्रयोग से बिना किसी अपव्यय के संसाधनों का सदुप्रयोग व सही समय, स्थान व मात्रा में आंवटन कर के कर सकते हैं।

किसानों को सुविधा

ड्रोन का उपयोग करके किसान सरलता से और सुविधाजनक तरीके से उन स्थानों में भी कीटनाशक रसायनों का छिड़काव कर सकते है जो कि सक्रंमित हैं तथा जहां लंबी अवधि की फसले हो और जहां खेत के ऊपर बिजली लाइने हो। इन क्षेत्रों में पहुँचना किसानों के लए चुनौतीपूर्ण होता है।

तुरन्त निर्णय लेने में सहायक

ड्रोन के विभिन्न सेंसरों के माध्यम से पूरे क्षेत्र के डेटा को लेकर उसक विश्लेषण किया जा सकता है। डेटा, समस्याग्रस्त क्षेत्रों जैसे सक्रंमित फसलों/अस्वास्थ्यकर फसलों, नमी के स्तर आदि की सूचना देता है। ड्रोन के सेन्सरों को कई फसलों के लिए उपयोग में लाया जा सकता है, जो अधिक सटीक और विविध फसल प्रबंधन प्रणाली में सहायक है।

संसाधनों का कम अपव्यय

एग्री–ड्रोन द्वारा प्राप्त आँकड़ों के आधार से सभी संसाधनों जैसे उर्वरक, पानी, बीज, और कीटनाशकों का इष्टतम उपयोग किया जा सकता है।

अच्छी सटीकता दर

ड्रोन सर्वेक्षण के आंकडों/चित्रों से किसानों को सटीक भूमि के आकार की गणना करनें, एक साथ विभिन्न फसलों की अवस्थाओं की जानकारी और मिट्टी के मानचित्रण में मदद मिलती है।

बीमा कंपनियों के लिए साक्ष्य

कृषि बीमा क्षेत्र कुशल और भरोसेमंद डेटा के लिए एग्री–ड्रोन का उपयोग करते हैं। वे किसानों को मौद्रिक भुगतान ड्रोन द्वारा किए गए आँकलन के आधार पर करते हैं।

टिड्डी नियंत्रण के लिए कृषि ड्रोन

टिड्डी दल बृहद आकार प्राप्त कर सम्पर्क मे आई सभी वनस्पति और फसलों को नष्ट कर देते हैं। इस से अकाल पड़ता है और खाद्यान का अभाव हो सकता है। हाल के दिनों में , भारत में, विशेषकर राजस्थान में, कई स्थानों पर टिड्डियों के झुंडों ने आक्रमण किया था। बीस जिलों की लगभग 90,000 हेक्टेयर भूमि प्रभावित होने के साथ, इन बढ़ते हुए झुण्डों से कृषि आपदा में वृद्धि होने का खतरा रहा। टिड्डी के झुंडों से जूझ रहे ज्यादातर देश ऑर्गनोफॉस्फेट रसायनों पर काफी भरोसा करते हैं। ये वाहन–घुड़सवार और हवाई स्प्रेयर द्वारा बहुत कम सांद्रता में उपयोग किए जाते हैं। राजस्थान में कुशलता से छिड़काव करने के लिए ड्रोन तैनात किए थे। ड्रोन कीटनाशकों को केवल 15 मिनट में लगभग 2.5 एकड़ में छिड़काव कर सकते हैं। टिड्डियों के झुण्डों को नष्ट करने के लिए ड्रोन का उपयोग तत्काल, सुरक्षित, सटीक और व्यावहारिक विधि है।

हिंदी जनतंत्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगी।

– सी राजगोपालाचारी

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के संदर्भ में जलागम प्रबंधन कार्यक्रम

प्रशान्त कुमार मिश्रा एवं संगीता नैथानी शर्मा

जलागम कार्यक्रम की संकल्पना

सतत् विकास के लिए प्रभावी रूप से भूमि एवं जल का उपयोग एक मूलभूत आवश्यकता है। जलागम प्रबंधन का विकास प्रभावी रूप से प्राकृतिक एवं सामाजिक पूँजी के प्रयोग को सुनिश्चित करना है। जलागम विकास कार्यक्रम के आवश्यक अव्यव भूमि, जल एवं मानव संसाधन हैं। जलागम कार्यक्रम मूल रूप से भूमि आधारित कार्यक्रम है, जिसे अधिकतर जल पर केंद्रित किया जा रहा है, चूँकि इसका मुख्य उद्देश्य खेती की पैदावार में स्वस्थानिक जल संरक्षण एवं फसलों को सुरक्षित सिंचाई द्वारा वृद्धि करना है, जिस से ग्रामीणों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास हो। जलागम जो कि एक जल संबंधी इकाई है, जिसका जल एक साझा निकास बिन्दु पर आता है, उसे भूमि, जल एवं वनस्पति के विकास की योजना बनाने की आदर्श इकाई के रूप में पहचाना जाता है। जलागम की संकल्पना का अधिकतर प्रयोग पारिस्थितिक तंत्र के अध्ययन में जल के संतुलन, महत्ता को ध्यान में रख कर किया जाता है। जलागम से पारिस्थितिक तंत्र के सटीक रूप से जल संतुलन के जल चक्र के अव्यवों, तलछट, ऊर्जा, ताप, कार्बन, पोषक तत्वों के संतुलन की नाप व अनुवीक्षण किया जा सकता है। जल क्षेत्र/नदी क्षेत्र (बेसिन) में स्थिर अनुवीक्षण केंद्रो को स्थापित किया जा सकता है, विभिन्न स्थानों पर प्रदूषण के कारकों पर नजर रखी जा सकता है। जल क्षेत्र (बेसिन) में जलागमों या उपजलगमों के स्तर पर अनुवीक्षण से वर्तमान व भविष्य की गतिविधियों के प्रभावों का विशलेषण कर क्षेत्र विशेष के प्रबंधन के विकल्पों की परियोजना के उद्दिष्ट उद्देश्यों की प्राथमिकताओं के आधार पर बनाई जा सकती है। जलागम की संकल्पना नई नहीं है। कई प्रकार के जलागम सम्बन्धि कार्यक्रम व संस्थान, जलागम के अध्ययन व प्रबंधन में कार्यरत हैं। हालाँकि परंपरागत ऊपर से नीचे की ओर प्रबंधन की विधि ने लाभ नही पहुँचाया है, क्योकि कुछ हद तक पूरा दबाव जैवभौतिक स्वरूप पर रहा और सामाजिक–आर्थिक पक्ष को सामुदायिक प्रतिभागिता में शामिल नहीं किया गया। अतः जलागम प्रबंधन कार्यक्रम उन लोगों से घनिष्ट रूप से संबद्ध होना चाहिए जिनकी सामाजिक–आर्थिक और साँस्कृतिक पृष्ठभूमि जलागम कार्यक्रम के लिए अर्थ पूर्ण योजना बनाने, लागू व क्रियान्वयन करने में निर्णायक हो। अतः समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम में जलागम के उच्चस्थ बिन्दु से निकास तक की गतिविधियों को तैयार करने, कार्यान्वयन और प्रबंधन में प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों को जलागम में क्रियाशील सभी कारको को संज्ञान में ले कर करना है।

समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम पूर्व में चले सूखा क्षेत्र कार्यक्रम, रेगिस्तान विकास कार्यक्रम एवं भूमि संसाधन विभाग के समेकित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम का स्वरूप है। इसका उद्देश्य अवनत मृदा, वनस्पति आवरण एवं जल के सतत् प्रबंधन एवं विकास द्वारा पारिस्थितिक संतुलन की पुर्नस्थापन करना है। इसके परिणाम स्वरूप मृदा का अपरदन रूकेगा, प्राकृतिक वनस्पति का पुर्नजनन होगा, वर्षा जल के संचय से भूजल का पुर्नभरण होगा। वर्तमान में प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना द्वारा समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम केंद्र बिन्दु है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

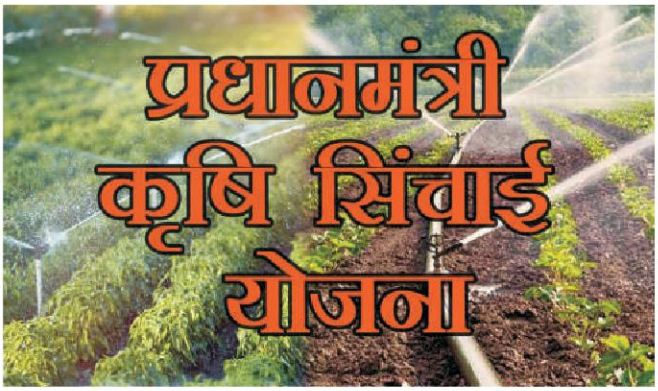

कृषि एवं बागवानी फसलों के सतत् उत्पादन एवं उत्पादकता के लिए व इन क्षेत्रों के विकास हेतु भूमि एवं जल संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग में गहरा संबंध है। वर्तमान में कई विभाग/मंत्रालय, विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में लगे हुए है, जिन से भूमि एवं जल संसाधनों का विकास किया जा सके। देश की करीब 142 मिलियन हेक्टेयर कृषि

योग्य भूमि में से मात्र 65 मिलियन हेक्टेयर भूमि सिंचित है। खेती की वर्षा पर अत्याधिक निर्भरता के कारण खेती अधिक जोखिम भरी है। इस प्रकार यह कम आय का व्यवसाय हो गया है। अनुभवजन्य साक्ष्य यह सुझाव देते है कि निश्चित सुरक्षात्मक सिंचाई/ स्वस्थानी नमी संरक्षण किसानों को कृषि की तकनीकों में अधिक लागत लगाने के लिए प्रेरित करता है, जिस से उत्पादकता में और खेती से आय में वृद्धि होती है।

प्रत्येक खेत में पानी पहुँचाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किए जा रहे सभी प्रयासों को एक साथ लाना होगा और स्थान विशिष्ट अभिनव प्रयोजनों से कमियों को दूर करना होगा। प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना का मुख्य उद्देश्य खेतों की सिंचाई के लिए सभी निवेशों को एक साथ करना, सुनिश्चित सिंचाई द्वारा खेती योग्य क्षेत्र का विस्तार करना, खेत में जल उपयोग की दक्षता को बेहतर करना, जिस से जल की बरबादी कम हो, सटीक सिंचाई एवं जल बचाने की अन्य तकनीकों को अपनाना (प्रति बूँद अधिक अनाज), जलभृतों (aquifer) का पुर्नभरण, सतत् जल संरक्षण के तरीकों को अमल में लाना, नगर महापालिका के गंदे पानी का उपचार कर उसे शहर से लगे क्षेत्र में कृषि के लिए उपयोग में लाने की संभावनायें तलाश करना और सटीक प्रणाली के लिए निवेश के आकर्षित करना है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना की परिकल्पना कार्यान्यवित की जा रही परियोजनाओं जैसे जल संसाधन मंत्रालय के त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम, नदी विकास एवं गंगा पुर्नजीवन, भूमि संसाधन विभाग के समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम और कृषि एवं सहकारिता विभाग के खेत में जल प्रबंधन कार्यक्रमों के संयोजन से हुआ है। यह परियोजना कृषि, जल संसाधन और ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा क्रियान्वित की जायेगी। ग्रामीण विकास मंत्रालय मुख्य रूप से वर्षा जल संरक्षण, खेतों में तालाब के निर्माण, छोटे चेक डैम और समोच्च पर बंद बनाने का कार्य करेगा। जल संसाधन मंत्रालय, नदी विकास एवं गंगा पुर्नजीवन, सिंचाई के स्त्रोत सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कार्य करेगा, जैसे कि खेतों के लिए नहरों को बनाना, जल को अन्य जगह पहुँचाने के लिए नहर बनाना, लिफ्ट सिंचाई, जल बंटवारे की प्रणाली विकसित करना है। कृषि मंत्रालय दक्ष जल प्रवाह और सटीक सिंचाई के उपकरण, जैसे, टपक सिंचाई, फुआरे, वर्षा गन का खेतों में उपयोग (जल सींचने) को बढ़ावा देगा। साथ ही सूक्ष्म सिंचाई करने के लिए निर्माण कार्य कर के जल स्त्रोत को बनाने के कार्य, वैज्ञानिक विधि से नमी संरक्षण को बढ़ावा देने के कार्य, विस्तार कार्य और कृषि के तरीकों का कार्य करेगा। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का ढाँचा विकेन्द्रीकृत राज्य स्तरीय योजना बनाना व उसका क्रियान्वयन है, जिस से राज्य अपनी सिंचाई के विकास की योजना जिला सिंचाई योजना व राज्य सिंचाई योजना के आधार पर बना सकेंगें। यह जल क्षेत्र से संबंधित सभी गतिविधियों जैसे पेयजल, स्वच्छता, मनरेगा, विज्ञान एवं तकनीक का एक विस्तृत योजना के तहत सम्मिलन मंच है। राज्य स्तरीय स्वीकृती समिति के अध्यक्ष राज्य के मुख्य सचिव होंगे जिनके पास परियोजनाओं की स्वीकृति एवं कार्यान्वयन के अधिकार निहित होंगे।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के संदर्भ में जलागम का महत्व– औपचारिक जलागम कार्यक्रम को प्रधामंत्री कृषि सिंचाई योजना के उद्देश्यों को सुदृढ करने हेतु गहन विशलेषण

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (http://agricoop.nic.in image default1/Guidelines RFSpmksy.pdf) के संदर्भ में जलागम कार्यक्रम देश के वर्षा आधारित क्षेत्रों/अवनत क्षेत्रों की समस्याओं को संज्ञान में लेने और उनके निराकरण के लिए एक कारगर उपाय माना एवं अपनाया गया है। समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम 2009–10 में तीन विकास कार्यक्रमों, यथा समेकित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम, सूखा पड़ने वाले क्षेत्रों के कार्यक्रम और रेगिस्तान विकास कार्यक्रम के सम्मिलन से प्रारंभ हुआ। समेकित जलागम प्रबंध कार्यक्रम के अंतर्गत अन्य के अतिरिक्त मुख्य गतिविधियाँ क्षमता निर्माण, प्रवेश बिन्दु गतिविधियाँ, रिज क्षेत्रों का उपचार, जल निकासी लाइन का उपचार, मृदा एवं नमी संरक्षण, वर्षा जल संचय, पौधशाला तैयार करना, वनीकरण, बागवानी, चारागाह विकास, संपत्ति विहीन व्यक्तियों के लिए आजीविका की गतिविधियाँ और छोटे व सीमान्त किसानों के लिए उत्पादन प्रणाली व सूक्ष्म उद्यम है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के अंतर्गत जलागम विकास से ऊपर वर्णित गतिविधियों को सहयोग मिलेगा, जिस से भूमि कटाव पर नियंत्रण होगा, भूजल का पुर्नभरण होगा और इस प्रकार परियोजना क्षेत्र में पारिस्थितिक तंत्र व आजीविका के साधनों में सुधार होगा।

भारत सरकार के हाल ही में की गई पहल में जल संरक्षण व उसके प्रबंधन को बहुत महत्व दिया गया है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना इस प्रकार बनाई गई है कि वर्षा आधारित क्षेत्रों में सिंचाई का विस्तार किया जा सके। स्वीकृत कार्यक्रम के चार घटक हैं, यथा त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम, हर खेत को पानी, प्रति बूंद अधिक अन्न एवं जलागम विकास जो कि स्त्रोत के विकास, वितरण, प्रबंधन, खेत में कार्यान्वयन व विस्तार गतिविधियों पर केंद्रित हो कर उनका समाधान करता है। इसके कार्यान्वयन के वर्तमान संदर्भ में जल की कमी का स्थानिक और लौकिक रूप रेखा में उचित वैज्ञानिक मूल्याँकन एवं संबंधित विभागों का संमिलन आवश्यक है। चूँकि प्रधानमंत्री जी ने राष्ट्र की राजनीतिक इच्छा को प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के माध्यम से उल्लेखित किया है, अतः नौकरशाहों एवं तकनीकी विशेषज्ञों को मिल कर राष्ट्रीय स्तर पर नए परिप्रेक्ष्य में आवश्यक दिशा–निर्देश राज्यों के लिए जारी करने चाहिए, जिससे वे अपने साधनों का उपयोग कर व स्थानीय कारकों को ध्यान रख कर के परियोजनाओं की योजना बना सकते है। इसके अतिरिक्त इस नई संकल्पना से प्रशंसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए वह दृष्टिकोण जिसके पार, उपयोगी जल संसाधन जिसकी रूप रेखा के तहत सिंचाई की योजना बनाई जाती है, का विस्तार भी आवश्यक है। योजना समग्र रूप से प्रत्येक अव्यव को तकनीकी और आर्थिक दृष्टिकोण से तौल कर बनाई जा सकती है, जिस से तालमेल के साथ वाँछनीय परिणाम प्राप्त हों। जल के स्थान एवं समय के अनुसार न्याय संगत वितरण के लिए, विकेन्द्रीकृत वर्षा जल संचय की पहल की आवश्यकता है, जिस से जलागम क्षेत्र के खण्डों के लिए गुणवत्ता युक्त जल की माँग को पूरा किया जा सके।

हमारे देश के 4000 BCM वर्षा मे से 1869 BCM जल उपयोग के लिए उपलब्ध है और उपयोग में 1123 BCM पानी लाया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में यह संकल्पना कि करीब 72% (4000–1123 BCM) जल जो कि अपवाह जल के रूप में/भूमि में जाकर या अन्य अस्पष्ट विधियों से उपयोग में नहीं आ पाता, उसकी क्षति को दूर करना प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का मुख्य उद्देश्य अपने एक उप–कार्यक्रम, यथा जलागम विकास के माध्यम से है। अतः वर्षा से प्राप्त कुल जल एवं उसके उपयोग को बढ़ाने के लिए कदम उठाने होंगे। यह उपयोग में न लाए गए वर्षा जल के प्रबंधन व भण्डारण (स्वस्थान व बाहय स्थान) पर केंद्रित सुनियोजित योजनाओं द्वारा किया जा सकता है, जिसे बाद में प्रयोग में लाया जा सकता है और अपवाह, जलाशयों में गाद जमा होना व वाष्पीकरण को नियंत्रित किया जा सके। यह तथ्य नीति आयोग के प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण विभाग की नीति में लाया जाना चाहिए, चूँकि समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम ही एक समग्र, औपचारिक कार्यक्रम है, जो कि देश के प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन को समर्पित है, जो कि पर्यावरण व जलवायु के तन्यक मुद्दों को संज्ञान में लेता है।

इस विधि से हम ऊपरी इलाकों में जल संरक्षण पर ध्यान देगें, जल के बहाव के समय को बढ़ाकर/जल को एक स्थान पर केंद्रित करेंगें, चूँकि ऊपरी क्षेत्र में संरक्षित जल धीरे–धीरे निचले क्षेत्र में मृदा से हाता हुआ पहुँचेगा और इस प्रकार क्षेत्र के बीच की व निचली भूमि/मृदा को नम रखेगा। इस प्रकार निकास नालियों के उपचार की आवश्यकता कम होगी चूँकि पूरे अपवाह जल का प्रबंधन/नियंत्रण जल ग्रहण क्षेत्र (कृषि योग्य/अयोग्य) के उपचार से किया जा सकेगा। इस जल को भूमिगत/सतह के नीचे लाकर भण्डारित किया जा सकता है, यदि रणनीतिक योजना बनाई जाए और जलागम विकास को प्रथम व सबसे महत्वपूर्ण उपाय के रूप में न्यायोचित ठहराया जाए, जिससे उचित मात्रा में जल विभिन्न कार्यों के लिए उपलब्ध हो सके।

अंततः एक अच्छा व सक्षम जलागम कार्यक्रम यदि सहभागिता से लागू किया जाए तो यह प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के उद्देश्यों की सफलता की ओर ले चलेगा। अतः हमारा ध्यान/केंद्र समेकित जलागम प्रबंधन कार्यक्रम पर होना चाहिए जिस में अधिक से अधिक हितधारकों की सहभागिता हो, जिस से सिंचाई के स्वरूप को स्पष्ट रूप से सतत् कृषि के लिए वर्षा पर निर्भर पारिस्थतिक तंत्र में उपयोग में लाया जा सके।

हिंदी आम बोलचाल की 'महाभाषा' है।

– जार्ज ग्रियर्सन

खनन, भूस्खलन एवं नदी कटाव से सुरक्षा हेतु जैव -अभियांत्रिक उपाय

आर के आर्य, सी एस तिवारी, एच एस भाटिया एवं अमित चौहान

भारत के लगभग 5 लाख वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में स्थित उत्तर–पश्चिम से उत्तर पूर्व तक लगभग 2500 कि.मी लम्बाई व 250–300 कि.मी. चौड़ाई में फैली हिमालय की पर्वत श्रृंखलाएं न केवल अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए विख्यात हैं, वरन् प्राकृतिक संसाधनों–जल, वनस्पति, वन्यजीव, खनिज, जड़ी बूटियों आदि का भी विशाल भण्डार हैं। देश में होने वाली वर्षा व मौसम को नियमित करने में भी हिमालय क्षेत्र की अहम् भूमिका है।

हाल के वर्षों मे बड़े वृहद हिमालय क्षेत्र में सड़क निर्माण, खनन व अन्य विकास कार्यों को किया गया जिसके फलस्वरूप भूक्षरण व भूस्खलनों में तीव्र वृद्धि हुई है। इस प्रकार के अत्यन्त अपरदित क्षेत्रों से मृदा क्षरण की दर की दर अत्यधिक, 300–550 टन प्रति हेक्टे0 तक मापी गयी है, जबकि सुप्रबंधित वन क्षेत्रों से यह मात्र लगभग 3 टन प्रति हेक्टे0 होती है। हिमालय के जल स्रोत भी इन कार्यो से प्रभावित हुए हैं। उदाहरणार्थ खनन के कारण दून घाटी में लगभग 50% जल स्रोत सूख गए (अज्ञात, 1988, बुलटिन सं0 2/88, राष्ट्रीय भू प्रयोग एवं संरक्षण बोर्ड'' कृषि मंत्रालय , नई दिल्ली)

खनन व सड़क निर्माण के लिए भूमि को कवच प्रदान करने वाले जंगलों को काटा गया और साथ ही विस्फोटकों का अत्यधिक प्रयोग किया गया, जिसके फलस्वरूप पहले से ही संवेदनशील यह इलाका हिल सा गया। करीब–करीब वनस्पति विहीन ढलानों पर अत्यधिक वेग से बहता हुआ बारिश का पानी अपने साथ बड़ी मात्रा में मिट्टी, पत्थर, मलबा आदि बहा ले जाता है। इससे नीचे के क्षेत्रों मे स्थित किसान के उपजाऊ खेत, घर, सिंचाई गूलें (छोटी नहर) आदि नष्ट हो जाती हैं और जन–धन की भी हानि होती है। यही अनियन्त्रित पाना जब नदी नालों में आता है तो किनारों को काटता हुआ आसपास के खेत व भूमि को तबाह कर देता है। देश मे लगभग 27 लाख हेक्टेयर भूमि नाला कटान की समस्या से ग्रसित है (अज्ञात, 1985, भारत में भूमि संसाधन एवं परिष्करण'', कृषि मंत्रालय, भूमि एवं जल संरक्षण विभाग, नई दिल्ली)

अतः जान–माल व पर्यावरण को हानि से बचाने के लिए खनन, भूस्खलन व नदियों के कटाव को रोकने के लिए संरक्षण अति आवश्यक है। भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, पूर्व नाम केन्द्रीय भूमि एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून ने भूस्खलन, खनन व नदी–नाला कटाव की समस्याओं पर अनुसंधान, कार्य किया है व उसके पर्यावरणीय पुर्नस्थापना हेतु एकीकृत जलागम प्रबन्ध की मृदा एवं जल संरक्षण तकनीकों का विकास किया है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

खनन क्षेत्र पुर्नस्थापना परियोजना सहस्त्रधारा

देहरादून के समीप सहस्त्रधारा स्थित खैरावां–धन्डोला खनिज क्षेत्र (क्षेत्रफल 64 हैक्टेयर) की पुर्नस्थापना के लिए संस्थान द्वारा सन् 1984 से कार्य प्रारम्भ किया गया था। वर्षा के मौसम मे इस खनिज क्षेत्र से आने वाला मलबा सड़क पर जमा होकर यातायात अवरूध कर देता था, जिसको साफ करने में लोक निर्माण विभाग को उस समय प्रतिवर्ष लगभग एक लाख रुपये खर्च करने पड़ते थे। इस क्षेत्र से होने वाले भूक्षरण की दूर 550 टन/हैक्टे0 थी (कटियार आदि 1987, सहस्त्रधारा क्षेत्र पुर्नस्थापना परियोजना, ''तकनीकी बुलेटिन, के.मृ. ज.सं.अ.प्र.सं, देहरादून)

संरक्षण उपाय

अत्यन्त अपरदित क्षेत्रों जैसे खनन या भूस्खलन क्षेत्र में उपजाऊ मिट्टी की कमी, नमी के अभाव तथा मलवा पत्थर आदि आने के कारण वनस्पति पेड़–पौधों, घास का करीब–करीब वनस्पति विहीन उगना बहुत कठिन होता है, अतः ऐसे क्षेत्रों मे प्रथम रक्षा पंक्ति के रूप में यान्त्रिक उपायों का प्रयोग बहुत आवश्यक है, जिसका मुख्य कार्य उपजाऊ मिट्टी को स्वस्थान रोकना व जमीन के ढाल में कमी करके अपवाह जल को भूमि में प्रवेश करने के लिए अधिक समय देने से मृदा मे नमी बढ़ जाती है। इसके बाद पौधों व पेड़ों की उपयुक्त प्रजातियों का रोपण कर जमीन को वनस्पति का कवच पहनाया जा सकता है। इस प्रकार संरक्षण उपायों में यान्त्रिक उपायों व वनस्पति दोनों का बाराबर योगदान होता है।

यान्त्रिक उपाय

नाले के ढाल को कम करने व मलबा रोकने के लिए गैबियन चैक बन्ध बनाये जाते हैं। ''गैबियन'' तार की जाली से बने बक्से है जिनमें पत्थर भर दिये जाते हैं। जाल बनाने के लिए 10 गेज मोटाई का गैल्वेनाइज्ड लोहे का तार प्रयुक्त

किया जाना चाहिए। जाल के छेद पत्थर के आकार के अनुसार 10 × 10 से मी से 15 × 15 से मी तक रखे जा सकते हैं। गैबियन संरचनाएं पानी का दबाव पड़ने पर यदि टेढ़ी–मेढ़ी भी हो जाएं तो टूटती नहीं, जबकि सीमेन्ट से बने चैकडैम इस स्थिति में टूट जाते हैं। यह कम खर्च, स्थानीय मजदूरों द्वारा बनाये जा सकते हैं, इसलिए भूमि संरक्षण कार्यों में गैबियन का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है।

छोटे नालों में जहां अपवाह कम हो , पत्थर की चिनाई के अथवा झाड–झंकार के रोकबन्ध भी बनाये जाते हैं। तीव्र ढालों (40 प्रतिशत से अधिक) पर भूस्खलन रोकने के लिए लकड़ी के लट्ठों से बनायी गई क्रिब संरचाएं प्रयोग की जाती हैं। इन संरचनाओं को बनाने के लिए यूकेलिप्टस की लगभग 10–15 से.मी व्यास की दो मीटर लम्बी बल्लियों को एक मीटर के अन्तराल से 0.5 मीटर गहरा गाड़ दिया जाता है। इसके पीछे एक मीटर के अन्तर पर इसी भांति दूसरी कतार में खम्बे गाड़े जाते है इसके बाद तीन मीटर लम्बी बल्लियां क्षैतिज दिशा में लम्बी कीलों की मदद से ठोक दी जाती हैं। इस प्रकार बक्सेनुमा शक्ल में यह संरचना नालों की पूरी चौड़ाई में बना दी जाती है। बल्लियों को दीमक से बचाने के लिए क्रियोसोल तेल से लीप दिया जाना चाहिए।

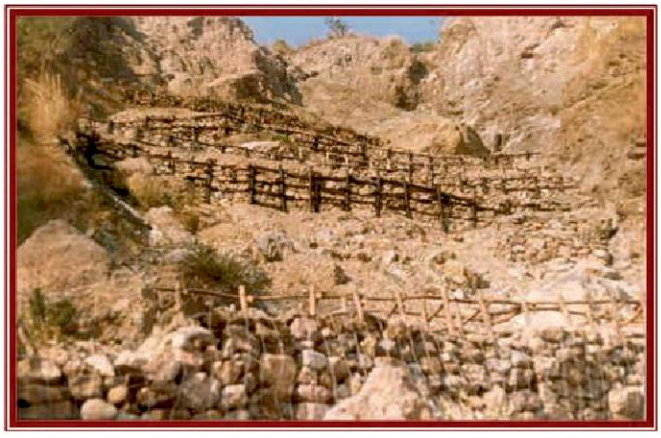

मृदा संरक्षण के लिए अपेक्षाकृत कम खड़ी ढालों पर समोच्च नालियों (कन्टूर ट्रेन्च) का प्रयोग प्रभावी पाया गया है। अनुपजाऊ बंजर ढलानों पर जीओजूट की चटाइयों का प्रयोग घासों को स्थापित करने मे सफल रहा (जुयाल आदि 1991, जीओजूट द्वारा खनित क्षेत्रों की पुर्नस्थापना'' बुलेटिन सं0 T-26/D- 19 के.मृ. ज.स.अ.प.सं. देहरादून)

वनस्पतिक उपाय

यान्त्रिक संरचाओं के निर्माण के बाद वनस्पतिक उपाय जैसे वृक्ष व घासों की विभिन्न प्रजातियों का रोपण क्षेत्र के स्थायित्व के लिए आवश्यक है। प्रजातियों का चयन इस प्रकार होना चाहिए जो स्थानीय जलवायु के अनुकूल हों, कठिन पारिस्थितिक दशाओं में उग सकें व जिनकी जड़ें गहरी जाकर मिट्टी को स्थायित्व प्रदान करें। प्रजातियों का चयन स्थानीय लोगों की आवश्कताओं के अनुरूप भी होना चाहिए, ताकि क्षेत्र के पुर्नस्थापन के बाद ग्रामवासियों की

घास, चारे व लकड़ी की आवश्कताएं भी पूरी हो सकें। बजरी व मलबे के स्थलों पर समोच्च नालियां खोद कर घास व झाडियां लगायी जाती हैं। अच्छी बढ़ावर के लिए नालियों में घास के स्थल पर उपलब्ध उपजऊ मिट्टी व गोबर की खाद के मिश्रण को भरा जाना चाहिए। हिमालय के उत्तर दक्षिण क्षेत्र के लिए उपयुक्त कुछ प्रजातियां निम्न प्रकार हैं।

वृक्षः— सूबबूल, छिन्ना/खिन्ना, मदारा, शीशम, तूण, कचनार, जलमाता (सेलिक्स), भीमल, खडिग, सेमल, जामुन, बकेन, आदि

झाड़ियाँः— बेशरम, शिमालू, नरकुल, आदि

घासेंः— भाभर, मूंज, कांस, झाडूघास, गोरडा, हाथीघास, आदि

सूबबूल तेज बढ़त वाली वृक्ष प्रजातियां हैं जो चारा, लकड़ी देने के साथ–साथ वातावारण से नाइट्रोजन खींचकर मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाती है।

लाभः— खनित क्षेत्र के पुर्नस्थापन में औसतन व्यय लगभग 15,000 रुपये प्रति हैक्टेयर हुआ जो इससे हुए लाभों को देखते हए नगण्य है। संरचना के फलस्वरूप क्षेत्र से मलबे का आना रूक गया है। रोकबन्ध व वनस्पति स्थापित होने के कारण वर्षा के पानी (अपवाह) को भूमि में समाने का अवसर मिला, इससे जहां वर्षा मे अपवाह की मात्रा में कमी हुई वहां यह भूमिगत जल वर्षा ऋतु के बाद भी अब साल भर बहता है जो पीने व सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता है। पानी की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। सड़क अब मलबे से अवरूध नहीं होती हैं। संरक्षण उपायों के फलस्वरूप खनित जल समेट में हुए पर्यावरणी सुधारों को नीचे तालिका में दर्शाया गया है ।

संरक्षण उपायों द्वारा खनित क्षेत्र का पुर्नस्थापन

विवरण	संरक्षण के पूर्व	संरक्षण के पश्चात्
मलबा व मृदा (टन/हैक्टे./वर्ष)	550	80
मनसून अपवाह (%)	57	37
वर्षा के पश्चात् जल आपूर्ति (दिन)	60	240
वनस्पति आवरण/क्षेत्र में आच्छादन (%)	नगण्य	90

पहले लोक निर्माण विभाग को खनित क्षेत्र से आये मलबों को सड़क से हटाने मात्र के लिए लगभग 1 लाख रुपये प्रतिवर्ष खर्च करने पड़ते थे। संरक्षण उपायों से मलवा आना रूक गया। इन वर्षों मे उक्त कार्य में जितना खर्च होता उससे कम व्यय में ही जैव–अभियांत्रिकी के संरक्षण उपाय कर मलबे को रोक लिया गया। साथ ही विभिन्न प्रकार की वनस्पति से पशुओं के लिए चारा, व मानव प्रयोग हेतु रेशे व जलावन लकड़ी व स्वच्छ जल उपलब्ध प्राप्त हुआ। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमि एवं जल संरक्षण उपाय न केवल प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है, वरन् लाभकारी भी हैं।

नलोतानाला भूस्खलन नियन्त्रण परियोजना

देहरादून मसूरी सड़क पर स्थित नलोतानाला के ऊपरी जलाशय क्षेत्र में हुए भीषण भूस्खलन के कारण नाला मलबे की गाद से भर जाया करता था और सड़क यातायात के लिए भी भयानक खतरा बना हुआ था। नलोतानाल जल समेट (50 हैक्टे.) के निचले भागों मे स्थिति 4 हैक्टे. का क्षेत्रफल गम्भीर भूस्खलन की समस्या से प्रभावित था। संस्थान द्वारा भूस्खल नियन्त्रण का कार्य प्रारम्भ किया गया। नियन्त्रण कार्यो को इन उपायों के अन्तर्गत किया गयाः—

1. सुरक्षात्मक उपाय
2. अभियांत्रिक संरचनात्मक उपाय तथा
3. वनस्पतिक उपाय

सुरक्षात्मक उपायों के अन्तर्गत नाले मे रोकबन्धों का निर्माण व स्पर, टो वाल आदि का निर्माण शामिल था।

वनस्पतिक उपायों में क्षेत्र के लिए उपयुक्त वृक्ष, घास, झाड़ियों का रोपण किया गया। गम्भीर भूस्खलन से ग्रस्त स्थानों पर वाटलिंग विधि का प्रयोग वनस्पति को स्थापित करने हेतु किया गया । इस विधि में सेमल, मन्दार आदि वृक्षों के खम्बे एक खाई पर पंक्ति में लगाये जाते हैं। खम्बों को जमीन के अन्दर लगभग 75 से.मी. व ऊपर लगभग 50 से.मी तक रखा जाता है । इन खम्बों को जंगली बेलों द्वारा मजबूती से आपस में बांध देते हैं। दो पंक्तियों के

बीच के खाली स्थान पर बेशरम, नेपियर, आदि झाड़ियों व घासों की कटिगं लगा देते है। आवश्यकता पड़ने पर छिटक कर तथा थोड़ा खोदकर घास–फूँस से ढक दिया जाता है। घास के बीज बह नहीं पाते हैं। व नमी सुरक्षित होने पर बीज शीघ्र उगकर धरती को आवरण प्रदान करते हैं। वाटलिंग की प्रक्रिया वर्षा शुरू होने के पूर्व कर ली जाती है ।

भूस्खलन उपायों के फलस्वरूप भूस्खलित क्षेत्र एक हरे – भरे भूभाग मे बदल गया जिससे वर्ष भर स्वच्छ जल की आपूर्ति रहती है ।

नदी कटाव नियन्त्रण

दून घाटी में नालों द्वारा कटाव की समस्या अत्यंत गम्भीर है। सड़क यातायात भी इनसे प्रभावित होता है। यह बरसाती नाले अपने साथ बड़ी मात्रा में मलबा लेकर बहते हैं। संस्थान द्वारा इन नदी नालों के नियन्त्रण के उपायों पर भी कार्य किया गया है।

किनारों को कटाव से बचाने के लिए गैबियन स्पर (ठोकर) उपयुक्त होती हैं। स्पर का कार्य जलधारा को नाले के मध्य में ठेलना है, साथ ही ये अपने आसपास मिट्टी इकट्ठा करते हैं जिन पर बेशरम, नरकुल या अन्य घासे लगाकर किनारों को मजबूत किया जा सकता है।

छोटे नालों में किनारों को क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए वनस्पतिक हैज (बाड़) का प्रयोग किया जाता है। इस हेतु 60 सेमी चौड़ी व 1 मीटर गहरी खाइयाँ खोदकर व उन्हे पुनः मिट्टी से भरकर उनमें बेशरम, नरकुल, हाथीघास आदि की कटिंग का रोपण कर दिया जाता है ।

पुराने नालों के तल पर चारे के वृक्ष व घास भी बखूबी उगाई जा सकती है। इस हेतु शीशम, गोरडा, खैर, तथा भाभर आदि पेड़ व घासें उपययुक्त पायी गयी हैं। इस प्रकार इस बंजर धरती से भी लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल

– भारतेंदु हरीशचंद्र

ब्लॉकचेन कृषि क्षेत्र को कैसे बदल सकता है

अक्षय धीरज[1], सादिकुल इस्लाम[1], आनंद कुमार गुप्ता[1], सपना निगम[2], सलम जयाचित्रा देवी[3], नीतीश कुमार[4] एवं पवन कुमार[5]

कृषि, अपने संबद्ध क्षेत्रों के साथ भारत में आजीविका का सबसे बड़ा स्रोत है। लगभग 70 प्रतिशत ग्रामीण परिवार आर्थिक रूप से इस पर निर्भर हैं। किसान को पारदर्शी रूप में विश्वसनीय जानकारी की आवश्यकता होती है, जो उन्हें सीधे बाजार, बैंकों और उपभोक्ताओं से जोड़ सके। किसानों के उत्पादों पर मुनाफाखोरी करने वाले बिचौलियों को समाप्त कर सके। इसके लिए तकनीक ब्लॉकचेन हैं, जिसके द्वारा इन सब समस्याओं को दूर किया जा सकता है। ब्लॉकचेन तकनीक स्पष्ट रूप से कृषि क्षेत्र में एक 'गेमर चेंजर' होगी क्योंकि यह टैम्पर प्रूफ, खेतों के बारे में सटीक जनकारी (आँकड़े), क्रेडिट स्कोर और फूड ट्रैकिंग की जानकारी प्रदान कर सकती है। इसलिए, किसानों को अब कृषि का महत्वपूर्ण हिसाब रखने करने और संग्रहित करने के लिए कागजी कार्यवाही/फाइलों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं होना पड़ेगा।

ब्लॉकचेन तकनीक– संक्षिप्त परिचय

ब्लॉकचेन साझा खाता या वितरित खाता तकनीक पर आधरित है। सरल शब्दों मे ब्लॉकचेन क्लाउड में एक बड़ा खाता होता है। इस खाता–बही में रिकॉर्ड, लेन–देन का विवरण और जानकारी होती है, जिसे ब्लॉक कहा जाता है। ये ब्लॉक अपरिवर्तनीय और टैंपर प्रूफ हैं, यानी इन ब्लॉकों में डेटा (आकंडों) को बदलना या हैक करना असंभव के समान है। ये सभी विशेषताएं विभिन्न नेटवर्क उपभोक्ताओं, (जैसे

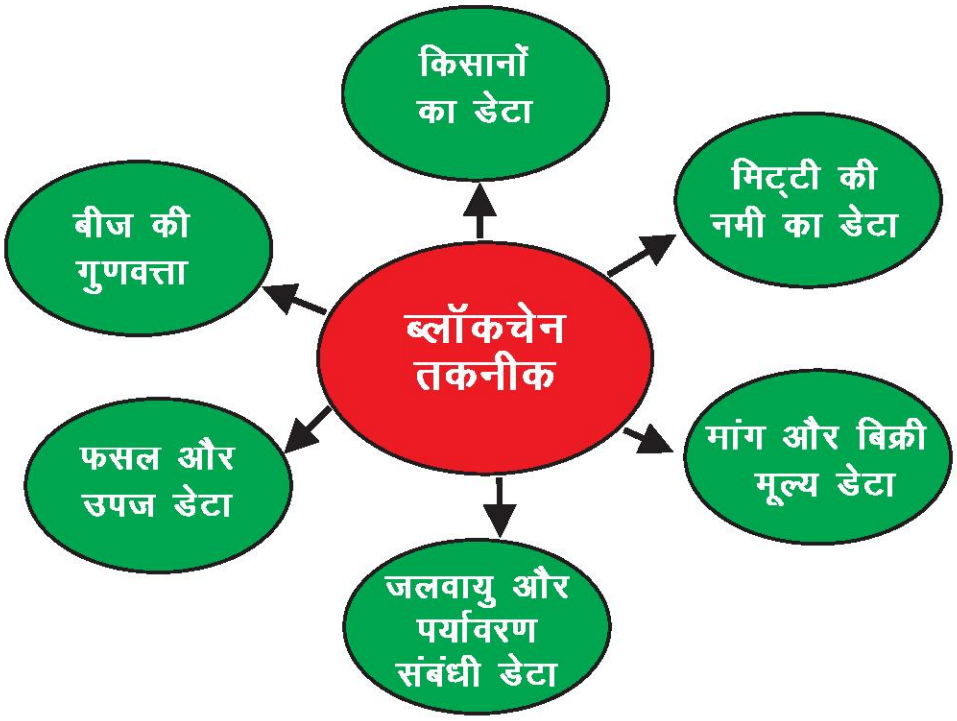

[1]भा.कृ.अनु.प. - भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून
[2]भा.कृ.अनु.प. - भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय शूकर अनुसंधान केन्द्र, गुवाहाटी
[4]भा.कृ.अनु.प. - केन्द्रीय कृषिरत महिला संस्थान, भुवनेश्वर
[5]भा.कृ.अनु.प. - केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

किसानों, उपभोक्ताओं खुदरा विक्रेतओं) के लिए अधिकतम सुरक्षा, पारदर्शिता और गति के साथ जानकारी को पंजीकृत और साझा करने को संभव बनाती है। एक बार डेटा मान्य होने के बाद, यह ब्लॉकों मे दर्ज हो जाता है, जो कालानुक्रमित श्रृंखला में व्यवस्थित हो जाता है। इसे किसी के द्वारा परिवर्वित नहीं किया जा सकता है ।

ब्लॉकचेन किसानों और उपभोक्ताओं/खुदारा विक्रेताओं के बीच सीधा संबंध स्थापित करने में सहायक है। यह छोटे किसानों के लिए एकजुट होने का अवसर देगा। यह किसानों की कम आय की समस्याओं को कम करेगा, क्योंकि ब्लॉकचेन आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता देगा, जिससे किसानों को उनकी उपज का उचित/वास्तविक मूल्य मिल सकेगा।

किसान एक ही प्लेटेफार्म पर बीज की गुणवता, मिट्टी की नमी, जलवायु और पर्यावरण से संबधित डेटा, भुगतान, मांग और बिक्री मूल्य से संबधित डेटा तुंरत प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि में ब्लॉकचेन तकनीक के अनुप्रयोग

कृषि बीमा

ब्लॉकचेन तीन चरणों की सहायता से मौसम संकट के प्रभाव को नियंत्रित करने में किसानों की मदद कर सकता है। स्मार्ट कृषि, किसानों को सेंसर और मैपिंग फील्ड की मदद से फसल के व्यवहार को समझने में सक्षम बनाती है। खेतो के भीतर कृषि मौसम स्टेशन रखने/स्थापित करने से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जैसे वर्षा, मिट्टी का तापमान, वायुमंडलीय दबाव, हवा की गति आदि। इस डेटा को रिकार्ड करके ब्लाकचेन में सुरक्षित रखा जा सकता है, जिससे किसान और अन्य हितधारक डेटा का पारदर्शी तरीके से उपयोग कर सकते हैं। मौसम केन्द्र द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार किसान खेती से संबधित निर्णय ले सकते हैं। मौसम संकट के दौरान फसल उत्पाद की क्षति के चलते किसान ब्लॉकचेन के माध्यम से फसल बीमा राशि के लिए सरलता एवं शीघ्रता से आवेदन कर सकते हैं।

कृषि उपज का पता लगाने की क्षमता

छोटे स्तर के किसानों को प्रायः उनकी उपज का सही मूल्य नहीं मिलता है। ब्लॉकचेन किसानों और ग्राहकों को कृषि उपज के उचित मूल्य का का पता लगाने और बिचौलियों से निपटने में सक्षम बनाता है। इसके अतिरिक्त, ब्लाकचेन प्रोद्योगिकी ट्रेडिंग कीमतों की स्पष्ट तस्वीर देगी और अंततः किसानो की आय बढाने मे सहायक होगी।

भूमि स्वामित्व, सर्वेक्षण, वित्तीय व्यवस्था

भारत में अभी भी किसानों का डेटा कागजी कार्यवाही के द्वारा सुरक्षित रखा जाता है, जो कि बहुत कठिन काम है। ब्लॉकचेन तकनीक से शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में किसानों का भूमि पंजीकरण/भूमि रिकॉर्ड का एक व्यवस्थित, डिजिटल खाता–बही रखा जा सकता है। जब डेटा प्रभावी रूप से संबधित डिजिटल आईडी से जुड़ जाता है, तो प्राकृतिक आपदाओं के दौरान भी रिकार्ड सुरक्षित रखा जा सकता है। एकत्र किए गए इस डेटा का उपयोग आगे सर्वेक्षणों के लिए किया जा सकता है, जो हमारे देश में लैंडहोल्डिंग के सटीक डेटा को बनाए रखता है। साथ ही किसानों को उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर अनुकूलित समाधान प्रदान करता है, जो टिकाऊ खेती को बढ़ावा देने मे मदद करेगा। ब्लॉकचेन तकनीक से वित्तीय मामले भी तेजी से, पारदर्शिता के साथ निपटाए जा सकते हैं। वित्तीय लेन–देन स्मार्ट अनुबंध कोड के रूप में लिखे जाते हैं और जब सभी मानदंडो को पूरा कर लिया जाता है, तो भुगतान स्वचालित रूप से सीधे किसान के खाते में किया जाता है।

खाद्य आपूर्ति श्रृखंला का अनुकूलन

खाद्य आपूर्ति श्रृंखला ट्रैकिंग उपज/फसल के स्रोत का पता लगाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान व्यवस्था में खुदरा विक्रेताओं के लिए उत्पाद की उत्पत्ति के सही स्थान की पुष्टि करना बहुत कठिन है। ब्लॉकचेन के उपयोग के साथ, खाद्य आपूर्ति श्रृखंला प्रणाली में विश्वास और पारदर्शिता लाना संभव हो गया है, जिससे सभी के लिए खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित हो गयी है। ब्लॉकचेन कृषि उत्पादकों को ट्रेस करने मे सहायक होगा, इससे किसानों और ग्राहकों को हर स्तर पर होने वाले लेन–देन पर नजर रखने मे मदद मिलेगी। कृषि उत्पाद के खेत से लेकर अंतिम उपभोक्ता तक पहुंचने मे किसी भी धोखाधड़ी का पता ब्लॉकचेन से लगाया जा सकता है। दिग्गज कंपनियां वॉलमार्ट, यूनिलीवर पहले से ही खाद्य उत्पादों की उत्पति के स्थानों का पता लगाने के लिए ब्लॉकचेन का उपयोग कर रही हैं।

कृषि में ब्लॉकचेन के लाभ और अवसर

- सभी हितधारकों के लिए पूरे मूल्य श्रृंखला के माध्यम से उत्पाद का उचित मूल्य निर्धारण
- छोटे किसानों के लिए वित्त और बीमा की सुविधा
- पारदर्शी लेन–देन और धोखाधड़ी की समाप्ति
- बेहतर गुणवता नियंत्रण और खाद्य सुरक्षा
- मूल्य श्रृंखला की पूर्ण जानकारी (ट्रेसेबिलिटी)
- जानकारी के आधार पर उपभोक्ता द्वारा क्रय निर्णय
- उत्सर्जन मे कमी और उपभोक्ता संतुष्टि में वृद्धि
- नियमों के अनुसार गोपनीयता बनाए रखते हुए डेटा के संबंध मे जानकारी (एक्सेसिबिलिटी)

भारतीय कृषि उद्योग के कार्य कर रही ब्लॉकचेन स्टार्ट–अप

ब्लॉकचेन का उपयोग करके, 'सहयाद्रि फार्म्स' उपभोक्ताओं को अधिक विकल्प देगा क्योंकि उनके उत्पादों को बीजों की गुणवता से लेकर फसल की कटाई, पैकेजिंग और वितरण तक ट्रैक (जानकारी प्राप्त) किया जा सकेगा। यह उत्पाद पर एक क्यूआर कोड की सरल स्कैनिंग के माध्यम से किया जाएगा।

पुणे स्थित **'एग्री 10 एक्स'** ने एक ब्लॉकचेन–आधारित बाजार विकसित किया है जो किसानों और वैश्विक व्यापारियों को जोड़ता है, बिचौलियों पर निर्भरता का कम करता है। इस समाधान से किसानो को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने में भी मदद मिलेगी। अंतर्राष्ट्रीय संस्थान **"आईसीआरआईएसएटी"**, **'इलेवन 01'** (भारत का स्वदेशी ब्लॉकचेन प्लेटफॉर्म) और **'खेतीनेक्स्ट'** (ई–कृषि सेवा प्रदाता) भारत में छोटे पैमाने के किसानों की उत्पादकता और आय बढाने के लिए ब्लॉकचेन तकनीक का उपयोग कर रहे हैं।

विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है।

– वाल्टर चेनिंग

नियुक्ति पत्र

सी एस तिवारी

पोस्ट मैन की आवाज सुनते ही,
मन मानो पुनर्जीवित हो गया।
नंगे पैर ही भागा चला गया,
रजिस्ट्री थी, मेरे ही नाम की।
शायद मेरे सपनों को पूर्ण करने की कुंजी, बरसों की पढ़ाई,
अनगिनत साक्षातकार।
अवश्य नियुक्ति पत्र होगा ?
मन प्रफुल्लित हो उठा, सपने हो उठे सजीव
ये करना है, वो करना है, बुन डाले, कुछ ही पलो में
लिफाफा खोला, पत्र पढ़ा
फिर से एक तुषारापात।
अफसोस पत्र था, नियुक्ति न हो पाने का।
भावनाऐं पुनः निर्जीव हो चली, पैर जलने लगे, तपती जमीन पर।
घिसड़ते हुए बढ़ चले अंदर की ओर, मन को मजबूत करने की प्रक्रिया,
फिर शुरू हो गई एक नियुक्ति पत्र की आस में।
हालांकि था, अहसास पुनः
नियुक्ति नहीं, अफसोस पत्र मिलेगा।
आधुनिकता की अंधी दौड़
खत्म कब होगी, कहाँ होगी?
नहीं है पता, तब तक शायद,
जिंदगी के बचे खुचे मायनों के, मायने न रहें
इंसानियत तो रह गई एक भ्रम
शायद इंसान भी न रहें।
आगे निकलने की चाह ने
जन्म दिया है स्वार्थ वरना, लोलुपता को
जिसका न कोई रिश्ता
इंसानी रिश्तों से
भूल चुका है मनुष्य कि
न कुछ लाया था, न ले जायेगा।
वरन न करता नादानी, न छल, न कपट
न दुखाता दिल इंसानो के
न होता नैतिक पतन इसका
गर जो समझ लेता, मायने जिंदगी के
न बनता आदमखोर, अगर वो रखता अपने दिल में,
इंसानी रिश्तों की महक को संजोकर।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में किसानों के खेतों पर उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा संसाधन संरक्षण एवं उत्पादकता में वृद्धि

देवनारायण

मध्य भारत में बुंदेलखण्ड क्षेत्र का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 70.4 लाख हैक्टेयर है।यहाँ की जलवायु उष्ण अर्ध शुष्क तथा यहाँ मुख्यतः लाल व काली मिट्टीयाँ पायी जाती है। इस क्षेत्र का धरातल ऊँचा–नीचा,है। यहाँ वर्षा कम होती है एवं उसका वितरण असामान्य है। सिंचाई की कम सुविधायें तथा पेड़–पौधों की वृद्धि के लिए अनुपयुक्त मृदायें है।इस क्षेत्र में लगभग 70 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि पर वर्षा आधारित खेती होती है तथा फसल उत्पादकता बहुत कम है। वर्षा के मौसम में भी इस क्षेत्र में सूखे की स्थितियाँ उत्पन्न होना सामान्य बात है। खरीफ के मौसम में भी लगभग 70 प्रतिशत कृषि क्षेत्र बिना फसलों की बुवाई के खाली रहता है। इन परिस्थितियों में कृषि की ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है जो आसानी से इन अवरोधों को दूर कर सकें।

कार्य विवरण

अनुसंधान केंद्र दतिया द्वारा विकसित उन्नत कृषि तकनीकों का किसानों के खेतों पर वर्ष 2007 से 2010 के दौरान सफल प्रदर्शन किए गए। निम्न वर्णित पाँच उन्नत कृषि तकनीकों का 'खरीफ' तथ अन्य पाँच तकनीकों का 'रबी' मौसम में दतिया नगर के आसपास के 10 गाँवों में, 15 से 20 किसान प्रति ऋतु के हिसाब से कृषकों के खेतों पर प्रदर्शन किये गये थे। जिस से किसान विस्तृत रूप में तकनीकों को जानने के साथ–साथ इन तकनीकों के परिणाम देखकर, तकनीकों को स्वतः रूप से अपनाये। आज भी ये उन्नत कृषि तकनीकें क्षेत्र में कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने हेतु प्रासंगिक हैं।

खरीफ मौसम की तकनीकें

- ज्वार+उड़द की अंतः वर्ती खेती (भू एवं वर्षा जल संरक्षण हेतु)।
- रेन गन द्वारा लम्बी अवधि के सूखे के दौरान सोयाबीन की सिंचाई। वर्षा जल संरक्षण हेतु गहरी जुताई के उपरांत ज्वार/सोयाबीन की फसल।
- भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि तथा नमी संरक्षण हेतु रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों का प्रयोग।
- नमी संरक्षण हेतु ज्वार की फसल में सनई के पलवार का प्रयोग।

रबी मौसम की तकनीकें

- सरसों व चना की अंतः वर्ती खेती।
- सीमित भू–जल की उपयोग दक्षता को बढ़ाने हेतु गेहूँ की फसल में रेनगन द्वारा सिंचाई।
- भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि एवं वर्षा जल संर्वधन हेतु सनई की हरी खाद के उपरांत गेहूँ की फसल।
- भूमि की उर्वरता एवं नमी संरक्षण हेतु गेहूँ की फसल में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग।
- हरी खाद की फसल के पश्चात् सरसों की फसल।

परिणाम/ निष्कर्ष

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अपनायी गई उन्नत कृषि तकनीकों केतीन वर्षों के औसत आँकड़ों ने दर्शाया है कि परंपरागत खेती की तुलना में उन्नत कृषि तकनीकों के प्रयोग से अधिक उत्पादन, जल उपयोग दक्षता में वृद्धि तथा अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ (तालिका)।

परंपरागत खेती की तुलना में उन्नत कृषि तकनीकों द्वारा उपज वृद्धि, जल उपयोग दक्षता व शुद्ध आय

फसल	**वृद्धि का प्रतिशत**
गेहूँ	5–10
सोयाबीन	35–50
ज्वार	20–40
सरसों	17–18
जल उपयोग दक्षता	
खरीफ मौसम	20–40
रबी मौसम	10–60
शुद्ध आय	रू. 1,000 से 14,000 प्रति हैक्टेयर

उन्नत कृषि तकनीकों का प्रयोग कर बुन्देलखण्ड क्षेत्र में लहलहाती फसलें।

जिम्मेदारी और पानी

दिनेश कुमार 'डीजे'

कैसी लापरवाही? कैसे सफर में जा रहे हैं?
जिम्मेदारी और पानी दोनों गटर में जा रहे हैं।

करोड़ों गैलन पानी हमने फिजूल में बहा दिया,
हमारे वारिसों के वसाइल कीचड़ में जा रहे हैं।

आने वाली पुश्तें कहीं प्यासी ना मर जाएँ,
पानी को बहाकर किस हशर में जा रहे हैं?

तीसरा विश्व युद्ध बस होगा पानी के लिए,
पानी को बहा हम तीसरे गदर में जा रहे हैं।

इंसान की खुदगर्जी ने कुदरत को जला दिया,
गलेशियर गलकर खारे समंदर में जा रहे हैं।

नदियाँ, ताल, झरने 'दिनेश' सब सूखने लगे हैं,
तरक्की के नाम हम किस डगर में जा रहें हैं?